उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जुलाई-सितम्बर, 2012 **निर्णय-सूची**

	पृष्ट संख्या
उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम सरोजा देवी (श्रीमती) और अन्य	1
कमानी इम्पलायज़ यूनियन बनाम रजिस्ट्रार व्यापार संघ और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 161)	
के. ई. सी. एम्पलायज़ एसोसिएशन बनाम सहायक रजिस्ट्रार व्यापार संघ और अन्य	161
छंगुर यादव बनाम बेसिक शिक्षा अधिकारी, देवरिया और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 10)	
छंगुर यादव बनाम सहायक शिक्षा निदेशक (बेसिक), गोरखपुर और अन्य	10
जवाहर लाल और एक अन्य बनाम उप-शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), मिर्जापुर और अन्य	30
टीनी उर्फ एन्टोनी बनाम जैकी और अन्य	107
नंदन टाकीज (मैसर्स) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य	24
न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लि. बनाम श्रीमती खातून और	
अन्य	47
प्रीतम सिंह बिश्नोई बनाम विमल कुमार महर्षि और अन्य	81
बाबू राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	21
यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम अब्दुल रज्जाक और एक अन्य	155
संसद् के अधिनियम	
पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 का हिन्दी में प्राधिकृत	
पाठ	(1) - (16)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक अनूप कुमार वार्ष्णेय **संपादक** महमूद अली ख़ां

21

महत्वपूर्ण निर्णय

माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के अधीन विरचित विनियमों के अध्याय 3 भाग II-ख का विनियम 7 — शिक्षा बोर्ड अभिलेखों में जन्म-तिथि के बारे में त्रुटि — उत्तीर्ण प्रमाणपत्र में उक्त त्रुटि न होना — सुधार के लिए अभ्यावेदन — जहां बोर्ड द्वारा प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट जन्म-तिथि दर्शाई गई हो वहां अभिलेख में त्रुटि होने पर बोर्ड दुरुस्ती करने के लिए आबद्ध है ।

बाबू राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

संसद् के अधिनियम

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) - (16)

पृष्ठ संख्या 1 – 172

(2012) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन विधायी विभाग विधि और न्याय मंत्रालय भारत सरकार उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – जुलाई-सितम्बर, 2012 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 1 – 172)

संपादक-मंडल

श्री विनोद कुमार भसीन, सचिव, विधायी विभाग

डा. संजय सिंह, अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

श्री आर. डी. मीना, संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता, (पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, गुरू गोविद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली डा. आर. पी. सिंह, सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद, सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल, सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय, प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां, संपादक

श्री जुगल किशोर, संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय, संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश

शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह

और बी. के. भटनागर

कीमत: डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36 वार्षिक : ₹ 135

© 2012 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा....... द्वारा मुद्रित ।

विषय-सूची

पृष्ट संख्या

उत्तर प्रदेश मान्यताप्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (अध्यापकों की भर्ती और सेवा शर्तें) नियम, 1978

— विनियम 4 [सपिटत संविधान, 1950 — अनुच्छेद 226] — मान्यता और सहायताप्राप्त विद्यालय — अध्यापक के रूप में नियुक्ति — प्रधान अध्यापक के त्यागपत्र देने पर रिक्त पद पर कार्य — प्रधान अध्यापक की सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति — चुनौती — प्रधान अध्यापक पद के लिए दावा — चूंकि त्यागपत्र के आधार पर उद्भूत रिक्ति पहले ही भर ली गई थी इसलिए बाद में रिक्ति होने पर 1978 के नियमों के अनुसार ही रिक्ति भरी जा सकती थी।

छंगुर यादव बनाम सहायक शिक्षा निदेशक (बेसिक), गोरखपुर और अन्य

उत्तर प्रदेश वर्ग-4 (समूह घ) कर्मचारी सेवा नियम, 1985

— नियम 6 और 10(4) [सपिठत उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय 3 का विनियम 2(1)] — समूह 'घ' कर्मचारी — प्रोन्नित — दफ्तरी के पद पर कार्यरत व्यक्ति को निरन्तर सेवा की अविध पर ध्यान दिए बिना लिपिक के पद पर प्रोन्नत किया जाना — दफ्तरी को संस्था के किसी अन्य चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी से अधिमानतः चतुर्थ श्रेणी संवर्ग में लंबी सेवा अविध होने पर भी लिपिक के रूप में प्रोन्नत किया जा सकता है।

जवाहर लाल और एक अन्य बनाम उप-शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), मिर्जापुर और अन्य

30

उत्तर प्रदेश शहरी भवन किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन अधिनियम, 1972

— धारा 21(1)(क) — किराएदार — किराए पर दी गई संपत्ति अन्य व्यक्ति द्वारा क्रय की जानी — नए मकान-मालिक द्वारा किराएदार को सूचना — वास्तविक आवश्यकता के आधार पर निर्मुक्ति के लिए आवेदन — किराएदार द्वारा दलीलों के अंतिम प्रक्रम पर सूचना की अभिस्वीकृति पर अपने हस्ताक्षर से इनकार करते हुए हस्तलेख विशेषज्ञ से परीक्षा कराने का अनुरोध — जहां यह साबित हो जाता है कि किराएदार को सूचना की पूर्व प्रक्रम पर जानकारी थी वहां उसे विलंबित प्रक्रम पर ऐसा विवाद्यक उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता — चूंकि मकान-मालिक की वास्तविक आवश्यकता किराएदार से अधिक तीव्र है अतः बेदखली का आदेश न्यायोचित है ।

प्रीतम सिंह बिश्नोई बनाम विमल कुमार महर्षि और अन्य

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947

— अध्याय 2ख [सपिठत औद्योगिक विवाद (राजस्थान संशोधन) अधिनियम, 1958 — धारा 9(1)] — व्यापार संघ — रिजस्ट्रीकरण — दो व्यापार संघों द्वारा बहुमत का दावा करते हुए रिजस्ट्रीकरण के लिए आवेदन — रिजस्ट्रार द्वारा बहुमत जानने के लिए गुप्त मतदान का आदेश पारित किया जाना — चुनौती — जहां किसी एक संघ का बहुमत स्पष्ट न हो वहां ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करना अनियमित नहीं है ।

के. ई. सी. एम्पलायज़ एसोसिएशन बनाम सहायक रजिस्ट्रार व्यापार संघ और अन्य

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923

— धारा 4(1)(क) — दुर्घटना — प्रतिकर — दावे की धनराशि से अधिक के लिए अधिनिर्णय — विधिमान्यता — जहां आवेदक द्वारा गलत आकलन या संगणना के आधार पर कम धनराशि की मांग की गई हो वहां न्यायालय सही आकलन के आधार पर प्रतिकर अधिनिर्णीत कर सकता है भले ही वह दावा की धनराशि से अधिक हो ।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम अब्दुल रज्जाक और एक अन्य

— धारा 4(1)(क) और (ख) — दुर्घटना — प्रतिकर — नियोजन के दौरान घटना न होने का अभिवचन — नियोजक की गाड़ी चलाने के दौरान घटना घटित होना — नियोजक प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायित्वाधीन है ।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम अब्दुल रज्जाक और एक अन्य

माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के अधीन विरचित विनियमों के अध्याय 3 भाग II-ख का विनियम 7

— शिक्षा बोर्ड अभिलेखों में जन्म-तिथि के बारे में त्रुटि — उत्तीर्ण प्रमाणपत्र में उक्त त्रुटि न होना — सुधार के लिए अभ्यावेदन — जहां बोर्ड द्वारा प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट जन्म-तिथि दर्शाई गई हो वहां अभिलेख में त्रुटि होने पर बोर्ड दुरुस्ती करने के लिए आबद्ध है।

बाबू राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 147, 149 और 163-क – दुर्घटना –

155

155

पृष्ट संख्या

प्रतिकर के लिए दावा — बीमा कंपनी द्वारा यह प्रतिरक्षा ली जानी कि बीमाकृत द्वारा जारी चैक का अनादरण होने के कारण बीमा कवर नोट रद्द कर दिया गया था — जहां ऐसे रद्दकरण की सूचना यातायात से संबंधित प्राधिकारी को न दी गई हो वहां बीमा कंपनी ऐसे रद्दकरण का फायदा नहीं ले सकती — बीमा कंपनी प्रतिकर के लिए दायित्वाधीन मानी जाएगी तथापि, बीमा कंपनी ऐसी धनराशि बीमाकृत से वसूल करने के लिए स्वतंत्र होगी।

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लि. बनाम श्रीमती खातून और अन्य

— धारा 163-क — मोटर दुर्घटना — मृत्यु — प्रतिकर के लिए दावा — धारा 163-क के अधीन किसी दावे में दावाकर्ता से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवचन करे या साबित करे कि मृत्यु या स्थायी निःशक्तता यान के स्वामी या किसी अन्य व्यक्ति के दोष, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुई थी ।

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम सरोजा देवी (श्रीमती) और अन्य

— धारा 163-क की उपधारा (1) — मोटर दुर्घटना — प्रतिकर के लिए दावा — मृतक की कोई आय न होना — जहां मृतक की कोई आय साबित न होती हो वहां उसकी आयु के आधार पर गुणक लागू करके प्रतिकर का अवधारण किया जाना चाहिए ।

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम सरोजा देवी (श्रीमती) और अन्य

संविधान, 1950

 अनुच्छेद 226 [सपिठत उत्तर प्रदेश सरकार की तारीख 3-11-1999 की मनोरंजन कर स्कीम का पैरा 47

1

पृष्ट संख्या

5(क) और 5(ख)] — सरकार द्वारा सिनेमा घरों में एयर कंडीशनर्स और जनरेटर लगाने के लिए प्रोत्साहन — सिनेमा घर मालिक द्वारा आधिक्य कर रोक कर उक्त स्कीम का फायदा लिया जाना — मनोरंजन कर के आधिक्य की तुलना वित्तीय वर्ष के साथ की जाएगी — तुलना स्थापना/उन्नति से ठीक पहले के 12 मास में संगृहीत मनोरंजन कर के संग्रह के साथ की जानी चाहिए।

नंदन टाकीज (मैसर्स) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

24

– अनुच्छेद 226 तथा 227 [सपिटत सिविल प्रक्रिया संहिता. 1908 की धारा 151 तथा आदेश 43 का नियम 1(द) और केरल नगरपालिका अधिनियम] – रिट – विधिपूर्ण कारबार को अवांछनीय तरीकों से बलपूर्वक बन्द कराना – इस संबंध में प्रवंचनापूर्ण और बेईमानीपूर्वक सम्बन्धित निगम से निर्देश प्राप्त करना तथा इस आधार पर न्यायालय से डिक्री प्राप्त करना – यदि यह साबित हो जाता है कि किसी व्यक्ति ने अन्य व्यक्ति के विधिपूर्ण कारबार को बन्द कराने तथा उसे तंग और परेशान करने के लिए प्रवंचनापूर्ण तथा बेईमानीपूर्ण तरीकों से सम्बन्धित निगम से निर्देश प्राप्त कर लिया है तथा उस आधार पर बेईमानीपूर्वक न्यायालय से कोई डिक्री प्राप्त कर ली है तो उन्हें किसी भी परिस्थिति में कायम नहीं रखा जा सकता है तथा इन्हें अभिखंडित कराने के लिए, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 तथा 227 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका ग्रहण किए जाने योग्य होगी ।

टीनी उर्फ एन्टोनी बनाम जैकी और अन्य

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की स्विधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग) विधि और न्याय मंत्रालय भारत सरकार भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय	श्री शर्मन लाल	357	40.00
	संस्करण)	अग्रवाल		
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
	(द्वितीय संस्करण)			
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है।

	4,	•,	_		
	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ट सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग) विधि और न्याय मंत्रालय भारत सरकार भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उत्तर प्रदेश राज्य सडक परिवहन निगम

बनाम

सरोजा देवी (श्रीमती) और अन्य

तारीख 14 अक्तूबर, 2009

न्यायमूर्ति एस. पी. महरोत्रा और न्यायमूर्ति राजेश चन्द्र

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) — धारा 163-क — मोटर दुर्घटना — मृत्यु — प्रतिकर के लिए दावा — धारा 163-क के अधीन किसी दावे में दावाकर्ता से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवचन करे या साबित करे कि मृत्यु या स्थायी निःशक्तता यान के स्वामी या किसी अन्य व्यक्ति के दोष, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुई थी।

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) — धारा 163-क की उपधारा (1) — मोटर दुर्घटना — प्रतिकर के लिए दावा — मृतक की कोई आय न होना — जहां मृतक की कोई आय साबित न होती हो वहां उसकी आयु के आधार पर गुणक लागू करके प्रतिकर का अवधारण किया जाना चाहिए।

दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 द्वारा वर्तमान अपील एक दुर्घटना में जितेन्द्र की मृत्यु के कारण प्रतिकर का दावा करते हुए मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क के अधीन 2008 की मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं. 397 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, इटावा द्वारा पारित तारीख 29 मई, 2009 के निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है | दुर्घटना तारीख 9 जून, 2008 को लगभग 11.30 बजे रात्रि में हुई थी | बस का जो अपीलार्थी की थी, रिजस्ट्रेशन सं. 93-ई-7847 था और जो अपीलार्थी का चालक चला रहा था | उक्त बस ने जितेन्द्र कुमार को टक्कर मारी थी, परिणामतः उक्त जितेन्द्र कुमार को क्षतियां पहुंची थीं जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई थी | अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क की उप-

धारा (1) अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंधित करती है कि मोटर यान का स्वामी या प्राधिकृत बीमाकर्ता मोटर यान उपयोग से हुई दुर्घटना के कारण मृत्यु या स्थायी निःशक्तता की दशा में, यथास्थिति, विधिक वारिसों या आहत व्यक्ति को, दूसरी अनुसूची में उपवर्णित प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी होगा । धारा 163-क अन्य बातों के साथ-साथ यह भी उपबंधित करती है कि धारा 163-क की उप-धारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए किसी दावे में, दावाकर्ता से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवचन करे या यह सिद्ध करे कि वह मृत्यु या स्थायी निःशक्तता जिसकी बाबत दावा किया गया है, यान के स्वामी या संबंधित यानों के स्वामी या किसी अन्य व्यक्ति के दोषपूर्ण कार्य या उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुई थी । अतः यह उल्लेखनीय है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क के अधीन प्रतिकर के संदाय के लिए दायित्व मृत्यू या स्थायी निःशक्तता की दशा में मोटर यान के प्रयोग से हुई दुर्घटना से उत्पन्न होता है । दावे के मामले में जहां मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क के अधीन प्रतिकर के लिए दावा किया गया है, उपेक्षा का अभिवचन करना या साबित करना आवश्यक नहीं है । जो सिद्ध किया जाना अपेक्षित है वह यह है कि प्रश्नगत यान दुर्घटना में अन्तर्वलित था और मृत्यू या निःशक्तता ऐसी दुर्घटना के कारण हुई थी । (पैरा 23 और 24)

धारा 163-क के अधीन फाइल दावा याचिका में प्रतिकर मोटर यान अधिनियम, 1988 की दूसरी अनुसूची के आधार पर अवधारित किया जाएगा । दूसरी अनुसूची की मद सं. 6 "ऐसे व्यक्तियों को प्रतिकर देने के लिए काल्पनिक आय जिनकी दुर्घटना से पूर्व कोई आय नहीं थी, के बारे में उपबंध करती है।" मद सं. 6 का खंड (क) बिना कमाने वाले व्यक्तियों के बारे में उपबंध करते हुए यह उपबंध करता है कि बिना कमाने वाले व्यक्तियों के मामले में, काल्पनिक आय "मृत्यु और अघातक घटनाओं में निःशक्तता" के मामलों में 15,000/- रुपए वार्षिक संगणित की जाएगी । अतः यह उल्लेखनीय है कि जहां मृतक बिना कमाने वाला व्यक्ति हो वहां प्रतिकर के अवधारण के लिए उसकी काल्पनिक आय 15,000/- रुपए वार्षिक के रूप में संगणित की जाएगी । अधिकरण ने दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के मृतक की आय के संबंध में 100/-रुपए प्रति दिन पक्षकथन को खारिज करते हुए मृतक जितेन्द्र की काल्पनिक आय 15,000/-रुपए वार्षिक स्वीकार की है । हमारे विचार में, अधिकरण ने ऊपर उल्लिखित दुर्घटना में उक्त जितेन्द्र की मृत्यु के कारण प्रतिकर के अवधारण के लिए

द्वितीय अनुसूची में यथाउपबंधित न्यूनतम काल्पनिक आय स्वीकार करने में कोई गलती नहीं की है । दुर्घटना के समय पर मृतक जितेन्द्र की आयु के संबंध में, अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला कि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 (उक्त जितेन्द्र की माता) की आयु निर्वाचन आयोग द्वारा जारी किए गए पहचान-पत्र के अनुसार तारीख 1 मई, 1995 को 22 वर्ष अभिलिखित की गई थी और तद्नुसार, दुर्घटना के समय दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 की आयु 35 वर्ष थी । दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह अभिकथित किया है कि उसका विवाह लगभग 20-22 वर्ष पहले हुआ था और उसके विवाह के समय उसकी आयु 15 वर्ष थी । इस प्रकार, उसके स्वयं के कथन के अनुसार, दुर्घटना के समय उसकी आयु 35-37 वर्ष थी क्योंकि उसका विवाह उसके स्वयं के कथन के अनुसार 20-22 वर्ष पहले हुआ था । इसलिए, अधिकरण द्वारा मृतक जितेन्द्र कुमार की आयु 15 वर्ष माना जाना सही था । घटना के समय मृतक जितेन्द्र की आयु 15 वर्ष स्वीकार करने पर अधिकरण द्वारा मोटर यान अधिनियम, 1988 की द्वितीय अनुसूची के अनुसार 15 का गुणक स्वीकार किया गया था । हमारे विचार में, अधिकरण ने प्रतिकर की संगणना करने में कोई गलती या अवैधता नहीं की है । 2000/- रुपए की रकम अंतिम संस्कार खर्चों के संबंध में अधिनिर्णीत की गई है और 2500/- रुपए की रकम संपदा की हानि के संबंध में अधिनिर्णीत की गई है तथा ऐसा मोटर यान अधिनियम, 1988 की द्वितीय अनुसूची के अनुसार किया गया है । (पैरा 25, 26, 27, 28 और 29)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की प्रथम अपील सं. 3037.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से

श्री लल्लन वर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से

कोई नहीं

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति एस. पी. महरोत्रा और न्यायमूर्ति राजेश चन्द्र ने दिया ।

निर्णय

हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री लल्लन वर्मा को सुना और अपील के साथ फाइल किए गए अभिलेख का परिशीलन किया।

2. दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 द्वारा वर्तमान अपील एक दुर्घटना में जितेन्द्र की मृत्यु के कारण प्रतिकर का दावा करते हुए मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क के अधीन 2008 की मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं. 397 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, इटावा द्वारा पारित तारीख 29 मई, 2009 के निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है। दुर्घटना तारीख 9 जून, 2008 को लगभग 11.30 बजे रात्रि में हुई थी। बस का जो अपीलार्थी की थी, रिजस्ट्रेशन सं. 93-ई-7847 था और जो अपीलार्थी का चालक चला रहा था। उक्त बस ने जितेन्द्र कुमार को टक्कर मारी थी परिणामतः उक्त जितेन्द्र कुमार को क्षतियां पहुंची थीं जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई थी।

- 3. दावा याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रकथन किए गए थे कि उक्त जितेन्द्र कुमार तारीख 9 जून, 2008 को रात्रि लगभग 11.40 बजे बस स्टेंड के अन्दर "ठेले" पर पानी बेचने के लिए अपने घर से जा रहा था । जब उक्त जितेन्द्र कुमार नेबल सड़क पार कर रहा था तो पूर्वोक्त प्रश्नगत बस आई और उक्त जितेन्द्र कुमार को कुचल दिया । उक्त जितेन्द्र कुमार की उपचार के लिए इटावा के जिला अस्पताल ले जाते हुए मृत्यु हो गई । पूर्वोक्त प्रश्नगत बस के चालक के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उसी दिन रात्रि को दर्ज कराई गई थी और उसे भारतीय दण्ड संहिता की धारा 279 और 304-क के अधीन 2008 के मामला अपराध सं. 274 के रूप में रिजस्ट्रीकृत किया गया था । उक्त जितेन्द्र कुमार की दुर्घटना के समय आयु 18 वर्ष थी और वह रोडवेज बस स्टेंड पर "ठेले" पर पानी बेचने का व्यवसाय करता था और वहां से वह प्रति दिन 100/- रुपए कमाया करता था । तद्नुसार, 4,93,500/- रुपए के प्रतिकर की रकम का दावा किया गया था ।
- 4. अपीलार्थी ने लिखित कथन फाइल करते हुए दावा याचिका का विरोध किया । अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रकथन किए गए थे कि दावा याचिका में तथाकथित दुर्घटना उस स्थान पर नहीं हुई थी; और दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 द्वारा प्रस्तुत किया गया दावा जाली है ।
- 5. इंदर सिंह (प्रत्यर्थी सं. 3, मृतक जितेन्द्र का पिता) को दावा याचिका में विरोधी पक्षकार के रूप में पक्षकार बनाया गया था और उसने दावा याचिका में किए गए प्रकथनों को स्वीकार करते हुए सारवान् रूप से अपना लिखित कथन फाइल किया था।
- 6. अधिकरण ने उक्त मामले में निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए:-

- 1. क्या तारीख 9 जून, 2008 की रात्रि में लगभग 11.40 बजे साबितगंज के बस स्टेंड "तिराहा" से मार्ग (नेबल मार्ग) पर उक्त जितेन्द्र को रोडवेज बस सं. यू.पी.-93-ई-7847 ने टक्कर मारी जिसके परिमणास्वरूप उक्त जितेन्द्र की क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई ?
 - 2. क्या प्रतिकर की रकम के लिए दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 हकदार हैं ?
- 7. दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने विभिन्न दस्तावेज फाइल किए थे । तथापि, अपीलार्थी या प्रत्यर्थी सं. 3 (अर्थात् दावा याचिका में विरोधी पक्षकार) की ओर से कोई दस्तावेज फाइल नहीं किया गया था ।
- 8. जहां तक मौखिक साक्ष्य का संबंध है, सरोजा देवी (अभि. सा. 1) और अरविन्द कुमार (अभि. सा. 2) की दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से और अपीलार्थी ने वीरेन्द्र कुमार (प्रति. सा. 1) की परीक्षा कराई है।
- 9. अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 1 का दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के पक्ष में सकारात्मक रूप में विनिश्चय किया गया । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रश्नगत रोडवेज बस अर्थात् बस सं. यू.पी.-93-ई-7847 दुर्घटना में अंतर्वलित थी जिसने उक्त जितेन्द्र को क्षतियां पहुंचाईं जिसके कारण उक्त जितेन्द्र की मृत्यु हो गई ।
- 10. अधिकरण ने अरविन्द कुमार (अभि. सा. 2) के कथन को निर्दिष्ट किया है जो दुर्घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है । उक्त अरविन्द कुमार ने अपने कथन में यह अभिकथित किया है कि जब वह तारीख 9 जून, 2008 को लगभग 11.40 बजे रात्रि अपना कार्य पूरा करने के पश्चात् नेबल मार्ग बस स्टेंड से कटरा बाल सिंह की ओर आ रहा था तो उसने यह देखा कि उक्त जितेन्द्र कुमार जैसे ही सड़क पर पहुंचा, पूर्वोक्त रोडवेज बस सं. यू.पी.-93-7847 के चालक ने उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक गाड़ी चलाते हुए उक्त जितेन्द्र को टक्कर मारी जो सड़क के एक ओर खड़ा हुआ था और परिणामस्वरूप उक्त जितेन्द्र को गंभीर क्षतियां पहुंचीं । उक्त जितेन्द्र को जिला अस्पताल, इटावा ले जाया गया था जहां कुछ समय के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई।
- 11. पूर्वोक्त प्रश्नगत बस के चालक अर्थात् वीरेन्द्र सिंह की प्रति. सा. 1 के रूप में अपीलार्थी की ओर से परीक्षा कराई गई है । उक्त वीरेन्द्र सिंह ने अपनी प्रतिपरीक्षा में पूर्वोक्त प्रश्नगत बस का दुर्घटना में अन्तर्विलत

होने के तथ्य को स्वीकार किया है।

- 12. दस्तावेजी साक्ष्य में जो अभिलेख पर पेश किया गया था "पंचायतनामा" और "शव परीक्षण रिपोर्ट" सम्मिलित हैं।
- 13. अधिकरण के समक्ष मामले में पेश किए गए मौखिक और देस्तावेजी साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह राय है कि दुर्घटना में पूर्वोक्त प्रश्नगत बस का जिसके कारण उक्त जितेन्द्र की मृत्यु हुई, अन्तर्वलन पूर्णतया सिद्ध हो गया है और इसलिए अधिकरण दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के पक्ष में सकारात्मक रूप में विवाद्यक सं. 1 का निष्कर्ष अभिलिखित करने में सही है।
- 14. जहां तक विवाद्यक सं. 2 का संबंध है, अधिकरण ने दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के इस कथन को स्वीकार नहीं किया कि मृतक जितेन्द्र 100/- रुपए प्रति दिन कमाता था । इसके बजाय, अधिकरण ने प्रतिकर की संगणना के लिए मृतक जितेन्द्र की काल्पनिक आय 15,000/-रुपए प्रतिवर्ष स्वीकृत की ।
- 15. दुर्घटना के समय पर मृतक जितेन्द्र की आयु दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 अर्थात् मृतक जितेन्द्र की माता की आयु के आधार पर 15 वर्ष मानी गई।
- 16. 15,000/- रुपए की काल्पनिक आय का एक तिहाई मृतक जितेन्द्र के वैयक्तिक खर्चों के लिए काटी गई थी और तद्नुसार, 10,000/- रुपए प्रतिवर्ष मृतक जितेन्द्र की आय पर दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की निर्भरता के रूप ली गई।
- 17. चूंकि मृतक जितेन्द्र की आयु दुर्घटना के समय पर 15 वर्ष मानी गई थी इसलिए अधिकरण द्वारा 15 के गुणक का अनुसरण किया गया ।
- 18. तद्नुसार, प्रतिकर 10,000x15=1,50,000/-रुपए के रूप में संगणित किया गया | 2000/- रुपए अंतिम संस्कार के खर्चों के लिए अधिनिर्णीत किए गए थे और 2,500/- रुपए संपदा के नुकसान के लिए अधिनिर्णीत किए गए | तद्नुसार, अधिकरण ने दावा याचिका की प्रस्तुति की तारीख से वास्तविक संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 1,54,500/- रुपए अधिनिर्णीत किए |
- 19. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री लल्लन वर्मा द्वारा यह दलील दी गई है कि अधिकरण ने मृतक जितेन्द्र की आय के रूप में

15,000/- रुपए स्वीकृत करने में भूल की है ।

- 20. श्री लल्लन वर्मा द्वारा दी गई दलील पर विचार करने के पश्चात् हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते ।
- 21. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 द्वारा दावा याचिका मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क के अधीन फाइल की गई थी।
 - 22. धारा 163-क इस प्रकार है :-

"163-क- संरचना सूत्र के आधार पर प्रतिकर के संदाय की बाबत विशेष उपबंध — इस अधिनियम में अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या विधि का बल रखने वाली किसी लिखत में किसी बात के होते हुए भी, मोटर यान का स्वामी या प्राधिकृत बीमाकर्ता, मोटर यान उपयोग से हुई दुर्घटना के कारण हुई मृत्यु या स्थायी निःशक्तता की दशा में, यथास्थिति, विधिक वारिसों या आहत व्यक्ति को, दूसरी अनुसूची में उपवर्णित प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी होगा।

स्पष्टीकरण — इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, 'स्थायी निःशक्तता' का वही अर्थ और विस्तार है जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 में है ।

- (2) उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए किसी दावे में, दावाकर्ता से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवचन करे या यह सिद्ध करे कि वह मृत्यु या स्थायी निःशक्तता जिसकी बाबत दावा किया गया है, संबंधित यानों के स्वामी या किसी अन्य व्यक्ति के दोषपूर्ण कार्य या उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुई थी।
- (3) केन्द्रीय सरकार, जीवन निर्वाह की लागत को ध्यान में रखते हुए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, समय-समय पर दूसरी अनुसूची का संशोधन कर सकेगी ।"
- 23. इस प्रकार धारा 163-क की उपधारा (1) अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंधित करती है कि मोटर यान का स्वामी या प्राधिकृत बीमाकर्ता मोटर यान उपयोग से हुई दुर्घटना के कारण हुई मृत्यु या स्थायी नि:शक्तता की दशा में, यथास्थिति, विधिक वारिसों या आहत व्यक्ति को, दूसरी अनुसूची में उपवर्णित प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी होगा । धारा 163-क अन्य बातों के साथ-साथ यह भी उपबंधित करती है कि धारा

163-क की उप-धारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए किसी दावे में, दावाकर्ता से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवचन करे या यह सिद्ध करे कि वह मृत्यु या स्थायी निःशक्तता जिसकी बाबत दावा किया गया है, यान के स्वामी या संबंधित यानों के स्वामी या किसी अन्य व्यक्ति के दोषपूर्ण कार्य या उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुई थी।

24. अतः यह उल्लेखनीय है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क के अधीन प्रतिकर के संदाय के लिए दायित्व मृत्यु या स्थायी निःशक्तता की दशा में मोटर यान के प्रयोग से हुई दुर्घटना से उत्पन्न होता है । दावे के मामले में जहां मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क के अधीन प्रतिकर के लिए दावा किया गया है, उपेक्षा का अभिवचन करना या साबित करना आवश्यक नहीं है । जो सिद्ध किया जाना अपेक्षित है वह यह है कि प्रश्नगत यान दुर्घटना में अन्तर्वलित था और मृत्यु या निःशक्तता ऐसी दुर्घटना के कारण हुई थी ।

25. धारा 163-क के अधीन फाइल दावा याचिका में प्रतिकर मोटर यान अधिनियम, 1988 की दूसरी अनुसूची के आधार पर अवधारित किया जाएगा । दूसरी अनुसूची की मद सं. 6 "ऐसे व्यक्तियों को प्रतिकर देने के लिए काल्पनिक आय जिनकी दुर्घटना से पूर्व कोई आय नहीं थी, के बारे में उपबंध करती है ।"

26. मद सं. 6 का खंड (क) बिना कमाने वाले व्यक्तियों के बारे में उपबंध करते हुए यह उपबंध करता है कि बिना कमाने वाले व्यक्तियों के मामले में, काल्पनिक आय "मृत्यु और अधातक घटनाओं में निःशक्तता" के मामलों में 15,000/- रुपए वार्षिक संगणित की जाएगी।

27. अतः यह उल्लेखनीय है कि जहां मृतक बिना कमाने वाला व्यक्ति हो वहां प्रतिकर के अवधारण के लिए उसकी काल्पनिक आय 15,000/- रुपए वार्षिक के रूप में संगणित की जाएगी । अधिकरण ने दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के मृतक की आय के संबंध में 100/- रुपए प्रति दिन पक्षकथन को खारिज करते हुए मृतक जितेन्द्र की काल्पनिक आय 15,000/- रुपए वार्षिक स्वीकार की है । हमारे विचार में, अधिकरण ने ऊपर उल्लिखित दुर्घटना में उक्त जितेन्द्र की मृत्यु के कारण प्रतिकर के अवधारण के लिए द्वितीय अनुसूची में यथा-उपबंधित न्यूनतम काल्पनिक आय स्वीकार करने में कोई गलती नहीं की है ।

28. दुर्घटना के समय पर मृतक जितेन्द्र की आयु के संबंध में,

अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला कि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 (उक्त जितेन्द्र की माता) की आयु निर्वाचन आयोग द्वारा जारी किए गए पहचान-पत्र के अनुसार तारीख 1 मई, 1995 को 22 वर्ष अभिलिखित की गई थी और तद्नुसार, दुर्घटना के समय दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 की आयु 35 वर्ष थी । दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह अभिकथित किया है कि उसका विवाह लगभग 20-22 वर्ष पहले हुआ था और उसके विवाह के समय उसकी आयु 15 वर्ष थी । इस प्रकार, उसके स्वयं के कथन के अनुसार, दुर्घटना के समय उसकी आयु 35-37 वर्ष थी क्योंकि उसका विवाह उसके स्वयं के कथन के अनुसार, उधिकरण द्वारा मृतक जितेन्द्र कुमार की आयु 15 वर्ष माना जाना सही था । घटना के समय मृतक जितेन्द्र कुमार की आयु 15 वर्ष स्वीकार करने पर अधिकरण द्वारा मोटर यान अधिनियम, 1988 की द्वितीय अनुसूची के अनुसार 15 का गुणक स्वीकार किया गया था । हमारे विचार में, अधिकरण ने प्रतिकर की संगणना करने में कोई गलती या अवैधता नहीं की है ।

- 29. 2,000/- रुपए की रकम अंतिम संस्कार के खर्चों के संबंध में अधिनिर्णीत की गई है और 2,500/- रुपए की रकम संपदा की हानि के संबंध में अधिनिर्णीत की गई है तथा ऐसा मोटर यान अधिनियम, 1988 की द्वितीय अनुसूची के अनुसार किया गया है।
- 30. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिया गया अधिनिर्णय किसी भी भूल या अवैधता से ग्रस्त नहीं है । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में कोई बल नहीं है और यह ग्रहण करने के प्रक्रम पर ही खारिज किए जाने योग्य है ।
- 31. तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है। तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चों के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है।
- 32. अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय के अधीन देय धनराशि को समायोजित करने के लिए अधिकरण को तुरन्त भेजी जाए।

अपील खारिज की गई।

मही./मह.

छंगुर यादव

बनाम

सहायक शिक्षा निदेशक (बेसिक), गोरखपुर और अन्य

तथा

छंगुर यादव

बनाम

बेसिक शिक्षा अधिकारी, देवरिया और अन्य

तारीख 8 जुलाई, 2010 न्यायमूर्ति अरुण टंडन

उत्तर प्रदेश मान्यताप्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (अध्यापकों की भर्ती और सेवा शर्तें) नियम, 1978 — विनियम 4 [सपिटत संविधान, 1950 — अनुच्छेद 226] — मान्यता और सहायताप्राप्त विद्यालय — अध्यापक के रूप में नियुक्ति — प्रधान अध्यापक के त्यागपत्र देने पर रिक्त पद पर कार्य — प्रधान अध्यापक की सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति — चुनौती — प्रधान अध्यापक पद के लिए दावा — चूंकि त्यागपत्र के आधार पर उद्भूत रिक्ति पहले ही भर ली गई थी इसलिए बाद में रिक्ति होने पर 1978 के नियमों के अनुसार ही रिक्ति भरी जा सकती थी।

प्रथम रिट याचिका के माध्यम से याची ने तारीख 18 जुलाई, 1991 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा सहायक निदेशक (बेसिक) ने किसान लघु माध्यमिक विद्यालय, मथौली बाजार, जिला देवरिया (अब जिला-कुशीनगर), जो उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम के अधीन सम्यक् रूप से एक मान्यताप्राप्त जूनियर हाई स्कूल है के प्रधान अध्यापक के रूप में छंगुर यादव की नियुक्ति को रद्द कर दिया था । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम रिट याचिका लंबित रहते हुए संस्था के प्रधान अध्यापक के पद हेतु नए सिरे से चयन किया गया था और एकमात्र राम प्रीत यादव का चयन हुआ था । उसके चयन को तारीख 13 मार्च, 1992 के आदेश के अधीन संस्था के प्रधान अध्यापक के रूप में बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया था । छंगुर यादव ने 1992 की द्वितीय रिट याचिका

सं. 17192 इसी आदेश के विरुद्ध फाइल की है । रिट याचिकाओं का तद्नुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख को उल्लेख करने की दृष्टि से यह उल्लिखित किया जा सकता है कि राम किशन सिंह को तारीख 18 जुलाई, 1991 के आदेश के अधीन संस्था के प्रधान अध्यापक के रूप में कार्य करने का हकदार ठहराए जाने के बाद भी उसने केवल अल्पावधि के लिए प्रधान अध्यापक के रूप में कार्य किया और उसके द्वारा तारीख 17 मार्च, 1992 को त्यागपत्र देना बताया गया है । इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि राम किशन का दावा यदि कोई है, वर्ष 1992 में उसके त्यागपत्र के साथ समाप्त हो गया था और इसलिए संस्था के प्रधान अध्यापक के पद पर श्री राम किशन के दावे की बाबत इस न्यायालय द्वारा कुछ कहे जाने की आवश्यकता नहीं है । अपर निदेशक तारीख 18 जुलाई, 1991 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए इस तथ्य का उल्लेख करने में असफल रहा है कि श्री राम किशन सिंह द्वारा अपनी रिट याचिका में तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश को चुनौती नहीं दी गई है और न ही यह दावा करने के लिए युक्तियुक्त समय के भीतर इसे प्रश्नगत किया गया है कि वह मान्यताप्राप्त संस्था का प्रधान अध्यापक था । उसने केवल श्री छंगुर यादव की नियुक्ति को चुनौती देना पसंद किया और वह भी बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा अनुमोदित किए जाने के पश्चात और इस प्रयोजन के लिए उसने उच्च न्यायालय में समावेदन करने के लिए सात वर्षों का समय लगाया है । अभिलेख पर की संपूर्ण परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि तारीख 17 फरवरी, 1983 का आदेश मुकदमे के पक्षकारों पर आबद्धकर नहीं है और उन्हें इसे प्रश्नगत करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । संस्था के प्रधान अध्यापक का पद तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश के अनुसार नए सिरे से सीधी भर्ती द्वारा भरा जाना अनिवार्य था । अपर निदेशक का तारीख 18 जुलाई, 1991 का आदेश मामले के पूर्वीक्त पहलुओं का उल्लेख करने में असफल रहा है और इसलिए यह अवैध बन जाता है । ऊपर उल्लिखित न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए जो तर्कसंगत निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि तारीख 17 मार्च, 1992 को प्रधान अध्यापक के रूप में राम प्रीत यादव की नियुक्ति जो श्री राम किशन सिंह द्वारा त्यागपत्र देने के कारण हुई थी, अपना महत्व खो देती है, क्योंकि केवल सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति तारीख 17 फरवरी, 1983 के बेसिक शिक्षा अधिकारी के आदेश के अधीन 1978 के नियमों के अनुसार संस्था के प्रधान अध्यापक

के पद पर की जा सकती थी । तथापि, यह आवश्यक है कि न्यायालय को इस बारे में जांच करनी चाहिए कि क्या बेसिक शिक्षा अधिकारी के तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश के अनुसरण में सीधी भर्ती द्वारा श्री छंगुर यादव की नियुक्ति जिसका तारीख 29 अप्रैल, 1983 को अनुमोदन किया गया, विधि के अनुसार की गई थी या नहीं । अपर निदेशक ने तारीख 18 जुलाई, 1991 के आदेश के अधीन इस आधार पर छंगुर यादव को उपयुक्त नहीं पाया कि राम किशन सिंह को संस्था के प्रधान अध्यापक के पद से हटाया नहीं गया था और इसलिए नियुक्ति के लिए कोई रिक्ति मौजूद नहीं थी । प्रक्रिया के संबंध में और श्री छंगूर यादव की आवश्यक अर्हता से संबंधित किसी अन्य पहलू के संबंध में परीक्षा नहीं की गई है। चयन की वैधता और श्री छंगुर यादव द्वारा प्रधान अध्यापक के रूप में उसकी नियुक्ति का अनुमोदन करने से पूर्व अपेक्षित आवश्यक अर्हताओं को पूरा करने के संबंध में संबंधित प्राधिकारियों द्वारा कानूनी नियमों के संदर्भ में जांच की जानी चाहिए थी । यही सिद्धांत मान्यताप्राप्त जूनियर हाई स्कूल में नियुक्त किए जाने के लिए प्रधान अध्यापक के मामले में लागू होगा । बी.एड. की उपाधि को 1978 के नियमों के नियम 4 के अधीन उपबंधित अनिवार्य अर्हताओं के अनुसार बी.टी.सी., जे.टी.सी., एच.टी.सी. इत्यादि के समतुल्य नहीं ठहराया जा सकता है । परिणामतः यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि न तो याची छंगुर यादव और न ही राम प्रीत यादव के पास अपनी नियुक्ति की अभिकथित तारीख को मान्यताप्राप्त जूनियर हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक के पद के लिए विहित न्यूनतम अर्हता थी । इस न्यायालय के अंतरिम आदेश के अधीन कार्य करने की कोई अवधि सेवा में प्रवेश की तारीख पर विहित आवश्यक अर्हता के अभाव में अवैध रूप में की गई उनकी नियुक्ति की कमी को पूरा नहीं करेगी। परिणामतः दोनों रिट याचिकाओं का यह उल्लेख करते हुए निपटारा किया जाता है कि श्री छंगुर यादव और श्री राम प्रीत यादव को संस्था में सहायक अध्यापक के रूप में कार्य करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा । प्रधान अध्यापक के पद की रिक्ति नए सिरे से पूर्णतया विधि के अनुसार भरी जाएगी । यह बताया गया है कि संस्था को हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट के रूप में उन्नत किया गया है यद्यपि उसे उक्त स्तर पर सहायता अनुदान सूची में नहीं लिया गया है । याची सहायक अध्यापक के रूप में निरन्तर बना रहने का हकदार होगा और वह हाई स्कूल के रूप में उन्नत हुए जूनियर हाई स्कूल में लागू नियमों के अनुसार सुनिश्चित वेतन पाने का भी हकदार होगा । (पैरा 12, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 27, 28, 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] (2009) 15 एस. सी. सी. 436 :

शीश मणि शुक्ला बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, देवरिया और अन्य :

28

[2006] (2006) 2 एस. सी. सी. 315 : मोहम्मद सरताज और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ।

26

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट : 1991 की सिविल प्रकीर्ण रिट अधिकारिता याचिका सं. 21706 और 1992 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं.

1719.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिकाएं ।

याची की ओर से सर्वश्री एस. आर. मिश्रा, सदानंद

शुक्ला और ए. के. मिश्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री ए. एन. त्रिपाठी, अरविन्द

कुमार मिश्रा, आर. पी. मिश्रा, ए. एन. सिंह, ए. के. सिंह, आर. सी. द्विवेदी और वी. सी. दीक्षित, स्थायी

काउंसेल

न्यायमूर्ति अरुण टंडन — याची की ओर से श्री एस. एन. शुक्ला, अधिवक्ता और प्रत्यर्थियों की ओर से श्री ए. एन. सिंह, अधिवक्ता, श्री ए. के. सिंह, अधिवक्ता, श्री ए. एन. त्रिपाठी, श्री आर. सी. द्विवेदी, अधिवक्ता, श्री आर. पी. मिश्रा, अधिवक्ता, श्री वी. सी. दीक्षित और स्थायी काउंसेल को सूना।

- 2. इन दोनों रिट याचिकाओं को संस्था के प्रधान अध्यापक द्वारा एक ही पद और हैसियत से छंगुर यादव द्वारा फाइल किया गया है । इन दोनों याचिकाओं को इकजाई किया गया और इनका एक साथ विनिश्चय किया जा रहा है ।
 - 3. प्रथम रिट याचिका के माध्यम से उसने तारीख 18 जुलाई, 1991

के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा सहायक निदेशक (बेसिक) ने किसान लघु माध्यमिक विद्यालय, मथौली बाजार, जिला देवरिया (अब जिला-कुशीनगर) (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'संस्था' कहा गया है), जो उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम के अधीन सम्यक् रूप से एक मान्यताप्राप्त जूनियर हाई स्कूल है, के प्रधान अध्यापक के रूप में छंगुर यादव की नियुक्ति को रद्द कर दिया था।

- 4. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम रिट याचिका लंबित रहते हुए संस्था के प्रधान अध्यापक के पद हेतु नए सिरे से चयन किया गया था और एकमात्र राम प्रीत यादव का चयन हुआ था । उसके चयन को तारीख 13 मार्च, 1992 के आदेश के अधीन संस्था के प्रधान अध्यापक के रूप में बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया था । छंगुर यादव ने 1992 की द्वितीय रिट याचिका सं. 17192 इसी आदेश के विरुद्ध फाइल की है ।
- 5. द्वितीय रिट याचिका में तारीख 13 मई, 1992 को इस आशय का अंतरिम आदेश पारित किया गया था कि याची नियमों के अधीन अनुज्ञेय प्रधान अध्यापक के पद का वेतन पाने का हकदार होगा, किन्तु, यह आदेश प्रत्यर्थी सं. 3 अर्थात् राम प्रीत यादव को संस्था के अध्यापक के रूप में वेतन प्राप्त करने के लिए उसके अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा । उक्त रिट याचिका में इस अंतरिम आदेश को आज की तारीख तक कायम रहने का कथन किया गया है।
- 6. इन दोनों रिट याचिकाओं में विवाद उसी संस्था के प्रधान अध्यापक के रूप में छंगुर यादव/राम प्रीत यादव की नियुक्ति और निरन्तर बने रहने से संबंधित है । प्रयोजन के लिए संक्षिप्त तथ्यों का वर्णन करना प्रासंगिक होगा ।
- 7. यह कहा गया है कि संस्था में कार्य कर रहे प्रधान अध्यापक अर्थात् पारस सिंह ने वर्ष 1976 में त्यागपत्र दे दिया था । पारिणामतः रिक्ति पर राम किशन नामक व्यक्ति को जो संस्था में सहायक अध्यापक के रूप में कार्य कर रहा था, तारीख 1 जुलाई, 1976 से अस्थायी प्रधान अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया था । इसके पश्चात् जुलाई, 1977 में उसे स्थायी प्रधान अध्यापक की नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया था । यह कहा गया है कि सुसंगत समय पर जूनियर बेसिक स्कूल के प्रधान अध्यापक की नियुक्ति को विनियमित करने वाले नियम, प्रधान अध्यापक के पद की नियुक्ति को विनियमित करने वाले नियम,

फरवरी, 1978 में अर्थात् उत्तर प्रदेश मान्यताप्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (अध्यापकों की भर्ती और सेवा शर्तें) नियम, 1978 (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् 'नियम 1978' कहा गया है) के रूप में अधिसूचित किए गए थे।

- 8. तथापि, प्रधान अध्यापक के रूप में राम किशन की नियुक्ति के संबंध में विवाद्यक लम्बे समय तक न्यायालय में नहीं चल सकता क्योंकि पक्षकारों ने यह स्वीकार किया है कि तारीख 17 फरवरी, 1983 को बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा एक आदेश पारित किया गया था जिसमें संस्था में कार्य कर रहे अध्यापकों के नाम अनुमोदित किए गए थे और उक्त आदेश में विशेष रूप से यह उल्लिखित किया गया था कि प्रधान अध्यापक के पद की रिक्ति को विज्ञापित किया जाए और कानूनी नियमों के अनुसार नए सिरे से नियुक्ति की जाए । तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश को छंगुर यादव ने या प्रबंध समिति ने या राम किशन ने चुनौती नहीं दी है।
- 9. यह कथन किया गया है कि राम किशन सिंह ने उक्त आदेश के विरुद्ध प्राधिकरण के समक्ष एक अभ्यावेदन फाइल किया । तथापि, यह कहा गया है कि तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश के निबंधनों में चयन की कार्यवाहियां आरंभ की गई थीं और छंगुर यादव को पुनः प्रधान अध्यापक के पद के लिए चयनित किया गया था । उसकी नियुक्ति को उसी रूप में तारीख 29 अप्रैल, 1983 को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया था । राम किशन सिंह द्वारा छंगुर यादव की नियुक्ति के अनुमोदन को 1990 की रिट याचिका सं. 4115 के माध्यम से चुनौती दी गई थी । रिट याचिका में अनुमोदन आदेश को अभिखंडित करने और उसके अभ्यावेदन पर विचार करने और विनिश्चित करने तथा तारीख 30 सितम्बर, 1989 के आदेश के प्रवर्तन को रोकने के लिए अनुरोध किया गया था जिसके द्वारा बेसिक शिक्षा अधिकारी ने यह निदेश दिया था कि छंगुर यादव को प्रधान अध्यापक का कार्यभार ग्रहण कराया जाए और इस संबंध में कार्यालय को तुरन्त सूचना भेजी जाए । न्यायालय द्वारा रिट याचिका पर विचार करने के पश्चात यह मत व्यक्त करते हुए खारिज कर दी गई कि यह अत्यन्त विलंबित है । तथापि, यह उल्लेख किया गया कि राम किशन सिंह द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर संबंधित प्राधिकारी द्वारा विचार किया जा सकता है।
- 10. रिट न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश के अनुपालन में अपर निदेशक (बेसिक) ने प्रथम रिट याचिका में तारीख 18 जुलाई, 1991 के आक्षेपित

आदेश के अधीन यह अभिनिर्धारित किया कि राम किशन सिंह संस्था में प्रधान अध्यापक था और चूंकि उसकी सेवाएं विधि के अनुसार या बेसिक शिक्षा अधिकारी के अनुमोदन से समाप्त नहीं की गई थीं, इसलिए वहां कोई रिक्ति नहीं थी जो विज्ञापित की जा सकती थी और जिसके विरुद्ध छंगुर यादव की नियुक्ति की जा सकती थी । इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि छंगुर यादव के पक्ष में नियुक्ति और अनुमोदन की मंजूरी अवैध थी ।

- 11. छंगुर यादव ने 1991 की रिट याचिका सं. 21706 के माध्यम से पूर्वोक्त आदेश को चुनौती दी है ।
- 12. अभिलेख को स्पष्ट करने की दृष्टि से यह उल्लिखित किया जा सकता है कि राम किशन सिंह को तारीख 18 जुलाई, 1991 के आदेश के अधीन संस्था के प्रधान अध्यापक के रूप में कार्य करने का हकदार ठहराए जाने के बाद भी उसने केवल अल्पावधि के लिए प्रधान अध्यापक के रूप में कार्य किया और उसके द्वारा तारीख 17 मार्च, 1992 को त्यागपत्र देना बताया गया है।
- 13. इस पृष्ठभूमि में राम प्रीत यादव को इस आधार पर संस्था में अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया कि राम किशन सिंह ने तारीख 17 मार्च, 1992 को संस्था से त्यागपत्र दे दिया था । बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा तारीख 17 मार्च, 1992 को राम प्रीत यादव की नियुक्ति का अनुमोदन किया गया था । तारीख 17 मार्च, 1992 के आदेश के अनुमोदन को छंगुर यादव द्वारा 1992 की रिट याचिका सं. 17192 के माध्यम से चुनौती दी गई थी ।
- 14. याची की ओर से यह दलील दी गई है कि तारीख 12 फरवरी, 1983 का आदेश 1990 की रिट याचिका सं. 4115 में जो राम किशन द्वारा फाइल की गई थी, चुनौती की विषयवस्तु नहीं थी और न ही उक्त आदेश को प्रबंध समिति द्वारा कभी भी चुनौती दी गई । तारीख 17 फरवरी, 1983 का आदेश दो भागों में है । प्रथम भाग में छंगुर यादव या राम किशन सिंह ने संस्था के प्रधान अध्यापक के रूप में नियुक्ति स्वीकार करने से इंकार कर दिया और द्वितीय भाग यह है कि प्रधान अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए 1978 के नियमों के अनुसार नए सिरे से रिक्ति विज्ञापित की जानी चाहिए।
 - 15. 1990 की रिट याचिका संख्या 4115 में तारीख 17 फरवरी,

1983 के आदेश को चुनौती नहीं दी गई थी । इस न्यायालय का यह निश्चित मत है कि किसी भी पक्षकार को इन कारणों से बेसिक शिक्षा अधिकारी के तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश को प्रश्नगत करने हेतु अनुज्ञात नहीं किया जा सकता (क) छंगुर यादव ने तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश को चुनौती नहीं दी है और (ख) प्रबंध समिति ने किसी फोरम के समक्ष चुनौती नहीं दी है (ग) राम किशन ने प्राधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन किया जाना बताया गया है किन्तु रिट याचिका सं. 4115/1990 में उसने उसकी जानकारी होने के बावजूद तारीख 17 मार्च, 1983 के बेसिक शिक्षा अधिकारी के आदेश को प्रश्नगत नहीं किया ।

- 16. दूसरा राम किशन यादव द्वारा वाद फाइल न करना है अर्थात् राम किशन यादव ने 1990 की रिट याचिका सं. 4115 के पैरा 2 में यह दावा किया था कि उसे तारीख 1 जुलाई, 1976 को संस्था के स्थायी प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त किया गया है राम किशन सिंह के काउंसेल ने 1990 की रिट याचिका सं. 4115 की प्रति जो राम किशन यादव ने फाइल की थी, आज न्यायालय के समक्ष फाइल की है । उसे अभिलेख पर रखा गया है जबकि प्रबंध समिति ने जिसने सहायक निदेशक के समक्ष राम किशन यादव का समर्थन किया है, यह अभिकथन किया है कि राम किशन को वर्ष 1976-77 में अस्थायी अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया था और तत्पश्चात् उसे जुलाई, 1977 में स्थायी प्रधान अध्यापक बना दिया गया ।
- 17. इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि राम किशन का दावा यदि कोई है, वर्ष 1992 में उसके त्यागपत्र के साथ समाप्त हो गया था और इसलिए संस्था के प्रधान अध्यापक के पद पर श्री राम किशन के दावे की बाबत इस न्यायालय द्वारा कुछ कहे जाने की आवश्यकता नहीं है।
- 18. अपर निदेशक तारीख 18 जुलाई, 1991 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए इस तथ्य का उल्लेख करने में असफल रहा है कि श्री राम किशन सिंह द्वारा अपनी रिट याचिका में तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश को चुनौती नहीं दी गई है और न ही यह दावा करने के लिए युक्तियुक्त समय के भीतर इसे प्रश्नगत किया गया है कि वह मान्यताप्राप्त संस्था का प्रधान अध्यापक था । उसने केवल श्री छंगुर यादव की नियुक्ति को चुनौती देना पसंद किया और वह भी बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा अनुमोदित किए जाने के पश्चात् और इस प्रयोजन के लिए उसने उच्च न्यायालय में समावेदन करने के लिए सात वर्षों का समय लगाया है ।

- 19. अभिलेख पर की संपूर्ण परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि तारीख 17 फरवरी, 1983 का आदेश मुकदमे के पक्षकारों पर आबद्धकर नहीं है और उन्हें इसे प्रश्नगत करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । संस्था के प्रधान अध्यापक का पद तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश के अनुसार नए सिरे से सीधी भर्ती द्वारा भरा जाना अनिवार्य था । अपर निदेशक का तारीख 18 जुलाई, 1991 का आदेश मामले के पूर्वोक्त पहलुओं का उल्लेख करने में असफल रहा है और इसलिए यह अवैध बन जाता है ।
- 20. ऊपर उल्लिखित न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए जो तर्कसंगत निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि तारीख 17 मार्च, 1992 को प्रधान अध्यापक के रूप में राम प्रीत यादव की नियुक्ति जो श्री राम किशन सिंह द्वारा त्यागपत्र देने के कारण हुई थी, अपना महत्व खो देती है, क्योंकि केवल सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति तारीख 17 फरवरी, 1983 के बेसिक शिक्षा अधिकारी के आदेश के अधीन 1978 के नियमों के अनुसार संस्था के प्रधान अध्यापक के पद पर की जा सकती थी।
- 21. तथापि, यह आवश्यक है कि न्यायालय को इस बारे में जांच करनी चाहिए कि क्या बेसिक शिक्षा अधिकारी के तारीख 17 फरवरी, 1983 के आदेश के अनुसरण में सीधी भर्ती द्वारा श्री छंगुर यादव की नियुक्ति जिसका तारीख 29 अप्रैल, 1983 को अनुमोदन किया गया, विधि के अनुसार की गई थी या नहीं । अपर निदेशक ने तारीख 18 जुलाई, 1991 के आदेश के अधीन इस आधार पर छंगुर यादव को उपयुक्त नहीं पाया कि राम किशन सिंह को संस्था के प्रधान अध्यापक के पद से हटाया नहीं गया था और इसलिए नियुक्ति के लिए कोई रिक्ति मौजूद नहीं थी । प्रक्रिया के संबंध में और श्री छंगुर यादव की आवश्यक अर्हता से संबंधित किसी अन्य पहलू के संबंध में परीक्षा नहीं की गई है ।
- 22. चयन की वैधता और श्री छंगुर यादव द्वारा प्रधान अध्यापक के रूप में उसकी नियुक्ति का अनुमोदन करने से पूर्व अपेक्षित आवश्यक अर्हताओं को पूरा करने के संबंध में संबंधित प्राधिकारियों द्वारा कानूनी नियमों के संदर्भ में जांच की जानी चाहिए थी।
- 23. साधारणतया इस न्यायालय द्वारा इस बारे में न्यायनिर्णयन के लिए मामला प्राधिकारियों को प्रतिप्रेषित करना चाहिए कि क्या वर्ष 1983 में छंगुर यादव का चयन विधि के अनुसार किया गया था या नहीं और यदि उत्तर नकारात्मक था तो न्यायालय इस बारे में बेसिक शिक्षा अधिकारी को

जांच करने के लिए निदेशित करता कि क्या वर्ष 1992 में श्री राम प्रीत यादव की नियुक्ति विधि के अनुसार की गई थी या नहीं ।

24. तथापि, इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए ऐसी किसी प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया है कि छंगुर यादव और राम प्रीत यादव के पास उत्तर प्रदेश मान्यताप्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (अध्यापकों की भर्ती और सेवा शर्तें) नियम, 1978 के संदर्भ में किसी मान्यताप्राप्त जूनियर हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अपेक्षित न्यूनतम अर्हता नहीं थी।

25. छंगुर यादव के काउंसेल और राम प्रीत यादव के काउंसेल ने यह स्वीकार किया है कि दोनों के पास बी.एड. की अध्यापन अर्हता है । वे जे.टी.सी., एच.टी.सी. या बी.टी.सी. नहीं हैं ।

26. इस विवाद्यक के संबंध में कि क्या जे.टी.सी., एच.टी.सी. या बी.टी.सी. इत्यादि बी.एड. की डिग्री के समतुल्य हैं, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मोहम्मद सरताज और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामले में परीक्षा की गई है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि बी.एड. अध्यापक प्रशिक्षण प्रमाणपत्र अर्थात् हिन्दुस्तानी शिक्षण प्रमाणपत्र, किनष्ठ शिक्षण प्रमाणपत्र, बेसिक शिक्षण प्रमाणपत्र या प्रशिक्षण प्रमाणपत्र इत्यादि के समान अर्हता नहीं है । इसलिए, बी.एड. की उपाधि के साथ अभ्यर्थी को परिषदीय विद्यालय में अध्यापक के रूप में नियुक्त किए जाने हेतु निरर्हित ठहराया गया है जहां विहित शिक्षण अर्हता जे.सी.टी., बी.टी.सी. इत्यादि है ।

27. यही सिद्धांत मान्यताप्राप्त जूनियर हाई स्कूल में नियुक्त किए जाने के लिए प्रधान अध्यापक के मामले में लागू होगा । बी.एड. की उपिध को 1978 के नियमों के नियम 4 के अधीन उपबंधित अनिवार्य अर्हताओं के अनुसार बी.टी.सी., जे.टी.सी., एच.टी.सी. इत्यादि के समतुल्य नहीं ठहराया जा सकता है ।

28. परिणामतः यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि न तो याची छंगुर यादव और न ही राम प्रीत यादव के पास अपनी नियुक्ति की अभिकथित तारीख को मान्यताप्राप्त जूनियर हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक के पद के लिए विहित न्यूनतम अर्हता थी । इस न्यायालय के अंतरिम

_

¹ (2006) 2 एस. सी. सी. 315.

आदेश के अधीन कार्य करने की कोई अवधि सेवा में प्रवेश की तारीख पर विहित आवश्यक अर्हता के अभाव में अवैध रूप में की गई उनकी नियुक्ति की कमी को पूरा नहीं करेगी । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि सेवा की लंबी अवधि प्रारंभिक नियुक्ति के समय की गई अवैधता को वैध नहीं बनाएगी । शीश मणि शुक्ता बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, देवरिया और अन्य¹ वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैरा 19 को उद्धृत करना सुसंगत होगा, जो इस प्रकार है:—

"यह सही है कि अपीलार्थी ने लंबे समय तक कार्य किया है। तथापि, उसकी नियुक्ति कानूनी उपबंध का उल्लंघन होने के कारण अवैध थी और इस प्रकार वह आरंभ से ही शून्य है। यदि उसकी नियुक्ति को कानूनी प्राधिकारी द्वारा अनुमोदन प्रदान नहीं किया गया है तो इस बात का आश्रय नहीं लिया जा सकता कि अपीलार्थी ने लंबे समय तक कार्य किया था। इसी प्रकार हमारी राय में भी यह बात रिट प्राप्त करने या परमादेश की प्रकृति की कोई रिट प्राप्त करने के लिए आधार नहीं बन सकती; चूंकि यह सुज्ञात है कि उक्त प्रयोजन के लिए रिट याची को स्वयं में विधिक अधिकार और राज्य में तत्स्थानी विधिक दायित्व निहित होना सिद्ध करना चाहिए (फूड कारपोरेशन आफ इंडिया बनाम आशीष कुमार गांगुली वाला मामला देखिए। यह सुव्यस्थित है कि केवल सहानुभूति या भावुकता कोई रिट जारी करने या परमादेश की प्रकृति में रिट जारी करने के लिए आधार गठित नहीं कर सकती (स्टेट आफ एम. पी. बनाम संजय कुमार पाठक वाला मामला देखिए)।"

29. परिणामतः दोनों रिट याचिकाओं का यह उल्लेख करते हुए निपटारा किया जाता है कि श्री छंगुर यादव और श्री राम प्रीत यादव को संस्था में सहायक अध्यापक के रूप में कार्य करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा । प्रधान अध्यापक के पद की रिक्ति नए सिरे से पूर्णतया विधि के अनुसार भरी जाएगी । यह बताया गया है कि संस्था को हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट के रूप में उन्नत किया गया है यद्यपि उसे उक्त स्तर पर सहायता अनुदान सूची में नहीं लिया गया है ।

¹ (2009) 15 एस. सी. सी. 436.

- 30. याची सहायक अध्यापक के रूप में निरन्तर बना रहने का हकदार होगा और वह हाई स्कूल के रूप में उन्नत हुए जूनियर हाई स्कूल में लागू नियमों के अनुसार सुनिश्चित वेतन पाने का भी हकदार होगा ।
- 31. जहां तक इस अवधि के लिए छंगुर यादव के वेतन के संदाय का संबंध है, बेसिक शिक्षा अधिकारी याची और प्रबंध समिति को सुनने का अवसर देने के पश्चात् मामले की परीक्षा करेगा । यदि बेसिक शिक्षा अधिकारी यह निष्कर्ष निकालता है कि श्री छंगुर यादव को संस्था में कार्य करने से प्रबंधतंत्र द्वारा अवैध रूप से रोका गया था तो वह श्री छंगुर यादव को वेतन के संदाय के लिए समुचित आदेश पारित करेगा और वह इस संबंध में धनराशि प्रबंधतंत्र से वसूल कर सकता है ।

रिट याचिकाएं तद्नुसार निपटाई गईं।

मही./मह.

(2012) 2 सि. नि. प. 21

इलाहाबाद

बाबू राम

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 3 अगस्त, 2010

मुख्य न्यायमूर्ति फरदीनो इनासियो रिबैलो और न्यायमूर्ति अमरेश्वर प्रताप साही

माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के अधीन विरचित विनियमों के अध्याय 3 भाग II-ख का विनियम 7 – शिक्षा बोर्ड अभिलेखों में जन्मितिथि के बारे में त्रुटि – उत्तीर्ण प्रमाणपत्र में उक्त त्रुटि न होना – सुधार के लिए अभ्यावेदन – जहां बोर्ड द्वारा प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट जन्म-तिथि दर्शाई गई हो वहां अभिलेख में त्रुटि होने पर बोर्ड दुरुस्ती करने के लिए आबद्ध है ।

अपीलार्थी, मूल याची, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2010 को पारित उस आदेश द्वारा व्यथित हुआ है जिसके द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने उसकी जन्म-तिथि के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 2 के अभिलेख में संशोधन करने के लिए अपीलार्थी द्वारा ईप्सित अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर दिया है। व्यथित होकर याची ने यह सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित — वर्तमान मामले में, न्यायालय ने यह पाया है कि उपरोक्त निर्दिष्ट विनियम 7 उत्तीर्ण प्रमाणपत्र में संशोधन के बारे में उपबंध करता है । उत्तीर्ण प्रमाणपत्र में कोई त्रुटि नहीं है । त्रुटि बोर्ड द्वारा अनुरक्षित अभिलेखों में है । अतः जहां तक अपीलार्थी के मामले का संबंध है उक्त विनियम लागू नहीं होता । जब एक बार स्वयं प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी की जन्म-तिथि तारीख 1 सितम्बर, 1949 दर्शाने वाला प्रमाणपत्र जारी किया है तो प्रत्यर्थी सं. 2, बोर्ड के अभिलेख में लिपिकीय गलती सही करने के लिए आबद्ध था । उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए, विद्वान् एकल न्यायाधीश का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है । याचिका के खंड (क) में किए गए अनुरोध के निबंधनों में अंतिम आदेश पारित किया जाता है । प्रत्यर्थी सं. 2 के अभिलेखों में जन्म-तिथि के संशोधन के लिए संपूर्ण कार्य आज से एक माह के भीतर पूरा किया जाए । (पैरा 6 और 7)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की विशेष अपील सं. 1202.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल रिट याचिका में पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष अपील ।

अपीलार्थी की ओर से

सर्वश्री ए. के. मिश्रा, ए. एन. त्रिपाठी

और आर. पी. मिश्रा

प्रत्यर्थी की ओर से

मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति फरदीनो इनासियो रिबैलो और न्यायमूर्ति अमरेश्वर प्रताप साही ने दिया ।

निर्णय

पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना गया ।

2. अपीलार्थी, मूल याची, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2010 को पारित उस आदेश द्वारा व्यथित हुआ है जिसके द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने उसकी जन्म-तिथि के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 2 के अभिलेख में संशोधन करने के लिए अपीलार्थी द्वारा ईप्सित अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर दिया है।

- 3. प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपीलार्थी को तारीख 1 सितम्बर, 1949 जन्म-तिथि दर्शाते हुए एक प्रमाणपत्र जारी किया था । विद्यालय के अभिलेख में भी उसकी जन्म-तिथि तारीख 1 सितम्बर, 1949 के रूप में दर्ज है किन्तु बोर्ड द्वारा अनुरक्षित अभिलेखों में अपीलार्थी की जन्म-तिथि 1 सितम्बर, 1946 दर्शाई गई थी । ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ व्यक्तियों ने यह अभिकथित करते हुए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की थी, कि अपीलार्थी ने नियोजन प्राप्त करने के प्रयोजन हेतु नकली प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया था । तत्पश्चात्, उसके विरुद्ध एक आपराधिक मामला दर्ज हुआ था । तथापि, अपीलार्थी को उक्त आपराधिक मामले में आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया था । तत्पश्चात्, अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के अभिलेखों में अपनी जन्म-तिथि के संशोधन के लिए माध्यमिक शिक्षा अधिनियम के अधीन विरचित विनियमों के अध्याय 3 (भाग 2-ख) के विनियम 7 के अधीन फाइल किया गया आवेदन लंबित रखा गया था ।
- 4. विनियमों का अध्याय 3 का विनियम 7 जो मामले के प्रयोजन के लिए सुसंगत है, इस प्रकार है :-
 - "7. सचिव, परिषद् की ओर से सफल अभ्यर्थियों को परिषद् की परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रमाणपत्र विहित प्ररूप में देगा और बाद में उसकी प्रविष्टियों में शुद्धि करेगा, बशर्ते कि प्रमाणपत्र में किसी ऐसी गलत प्रविष्टि, किसी अवचारित लिपिकीय भूल या लोप के कारण या किसी प्रेस लिपिकीय भूल के कारण की गई हो जो असावधानी से परिषद् के स्तर के या उस संस्था के, जहां से अंतिम बार शिक्षा प्राप्त की हो, स्तर पर अभिलेख में हो गई हो । यह शुद्धि सचिव द्वारा उसी स्थिति में की जा सकेगी जबिक अभ्यर्थी ने संबंधित परीक्षा के प्रमाणपत्र को परिषद् द्वारा निर्गमन करने की तारीख से दो वर्ष के अन्दर ही लिपिकीय त्रुटि की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए संबंधित प्रधानाचार्य/केन्द्र व्यवस्थापक को त्रुटि के संशोधन हेतु प्रार्थनापत्र प्रस्तुत कर दिया हो और उसकी प्रति पंजीकृत डाक से सचिव, परिषद को भी प्रेषित की हो।"
- 5. अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई याचिका में, विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष यह अभिवाक् भी किया गया था । तथापि, विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि आवेदन समय अविध से परे किया गया था और यह ग्राह्य नहीं था और हमारे समक्ष अपीलार्थी अपनी जन्म-तिथि की घोषणा के लिए सिविल वाद फाइल कर सकता है ।

- 6. वर्तमान मामले में, हमने यह पाया है कि उपरोक्त निर्दिष्ट विनियम 7 उत्तीर्ण प्रमाणपत्र में संशोधन के बारे में उपबंध करता है । उत्तीर्ण प्रमाणपत्र में कोई त्रुटि नहीं है । त्रुटि बोर्ड द्वारा अनुरक्षित अभिलेखों में है । अतः जहां तक अपीलार्थी के मामले का संबंध है, उक्त विनियम लागू नहीं होता । जब एक बार स्वयं प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी की जन्म-तिथि तारीख 1 सितम्बर, 1949 दर्शाने वाला प्रमाणपत्र जारी किया है तो प्रत्यर्थी सं. 2, बोर्ड के अभिलेख में लिपिकीय गलती सही करने के लिए आबद्ध था ।
- 7. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए, विद्वान् एकल न्यायाधीश का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है । याचिका के खंड (क) में दिए गए अनुरोध के निबंधनों में अंतिम आदेश पारित किया जाता है । प्रत्यर्थी सं. 2 के अभिलेखों में जन्म-तिथि के संशोधन के लिए संपूर्ण कार्य आज से एक माह के भीतर पूरा किया जाए ।
- 8. अपील का निपटान किया जाता है । खर्चों के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./मह.

(2012) 2 सि. नि. प. 24

इलाहाबाद

नंदन टाकीज (मैसर्स)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

तारीख 26 अगस्त, 2010

न्यायमूर्ति यतिन्द्र सिंह और न्यायमूर्ति राजेश कुमार

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपिटत उत्तर प्रदेश सरकार की तारीख 3-11-1999 की मनोरंजन कर स्कीम का पैरा 5(क) और 5 (ख)] – सरकार द्वारा सिनेमा घरों में एयर कंडीशनर्स और जनरेटर लगाने के लिए प्रोत्साहन – सिनेमा घर मालिक द्वारा आधिक्य कर रोक कर उक्त स्कीम का फायदा लिया जाना – मनोरंजन कर के आधिक्य की तुलना वित्तीय वर्ष के साथ की जाएगी – तुलना स्थापना/उन्नति से टीक पहले

के 12 मास में संगृहीत मनोरंजन कर के संग्रह के साथ की जानी चाहिए ।

रिट याचिका में सिनेमा घर स्वामियों को प्रोत्साहित करने और एयर कंडीशनर्स और जनरेटर इत्यादि लगाने के लिए नवम्बर, 1999 की स्कीम (जिसे आगे संक्षेप में "स्कीम" कहा गया है) के फायदे प्रदान करने से संबंधित मुख्य प्रश्न अंतर्वलित है । तद्नुसार रिट याचिका का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – "छवि गृह वर्ष" शब्दों को स्कीम में परिभाषित नहीं किया गया है । इस संबंध में कुछ भ्रम था । सरकार ने उसको स्पष्ट करते हुए दो अन्य सरकारी आदेश अर्थात् तारीख 17 नवम्बर, 2003 का आदेश (सरकारी आदेश 2003) और तारीख 3 अगस्त, 2004 का आदेश (सरकारी आदेश 2004) जारी किया था । 2003 के सरकारी आदेश में यह उल्लिखित किया गया था कि मनोरंजन कर के आधिक्य की तुलना वित्तीय वर्ष के साथ की जा सकती है। स्कीम के अधीन फायदा फिल्म हॉल को उन्नत किए जाने के लिए दिया जाना था । यह अपेक्षा की गई थी कि उन्नति टिकटों के विक्रय को बढ़ाकर और परिणामतः मनोरंजन कर के संग्रह को बढ़ाकर की जाएगी । इस कारण से निवेश का 50 प्रतिशत बढे हुए मनोरंजन कर को समायोजित किया जाना था । जहां यह कारण था वहां वित्तीय वर्ष में मनोरंजन कर के संग्रह के साथ तुलना करना उपयुक्त नहीं होगा; तुलना पूर्वगामी उन्नित वर्ष (12 माह) से की जाएगी । स्कीम के अधीन निवेश का आधा भाग स्थापना/उन्नति से अगले तीन वर्षों में समायोजित किया जाएगा । तथापि, आक्षेपित आदेश तीन वर्ष की समाप्ति से पूर्व पारित किया गया था । तीन वर्ष की अवधि पूरी हो चुकी है और यदि यह आदेश सही भी हो तो भी उसका उपांतरण अपेक्षित है क्योंकि याची उस शेष अवधि के लिए धनराशि रोकने का हकदार होगा जो आदेश पारित करने समय शेष रह गई थी । पूर्वोक्त परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह न्याय हित में होगा कि जिला अधिकारी से पुनः विनिश्चय करने के लिए कहा जाए यदि कोई रकम तीन वर्ष की अवधि समाप्ति के पश्चात् भी देय है और यदि देय है तो उसे विधि के अनुसार वसूल किया जाएगा । (पैरा 14, 15, 18 और 19)

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट : 2010 की प्रकीर्ण रिट याचिका सं. अधिकारिता 503.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका । **याची की ओर से** श्री एम. के. गुप्ता प्रत्यर्थी की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति यतिन्द्र सिंह और न्यायमूर्ति राजेश कुमार ने दिया ।

निर्णय

रिट याचिका में सिनेमा घर स्वामियों को प्रोत्साहित करने और एयर कंडीशनर्स और जनरेटर इत्यादि लगाने के लिए नवम्बर, 1999 की स्कीम (जिसे आगे संक्षेप में "स्कीम" कहा गया है) के फायदे प्रदान करने से संबंधित मुख्य प्रश्न अंतर्वलित है।

- 2. मामले के तथ्य ये हैं कि याची (मैसर्स नंदन टाकीज) एक रिजस्ट्रीकृत भागीदारी फर्म है। यह अलीगढ़ में "नंदन टाकीज" के नाम से सिनेमा घर चलाती है।
- 3. सरकार ने वातानुकूलितों, जिनत्रों इत्यादि को लगाने के लिए सिनेमा घर के स्वामियों को प्रोत्साहन देने के लिए स्कीम निकाली है । स्कीम के अधीन पूर्ववर्ती वर्ष में एकत्रित मनोरंजन कर के आधिक्य में अगले तीन वर्षों के लिए अनुदान सहायता के रूप में वातानुकूलितों, जिनत्रों इत्यादि की निवेश रकम का आधा भाग सिनेमा घर के स्वामियों द्वारा रोका जा सकता है ।
- 4. याची ने सिनेमा घर में जिनत्र लगाने के लिए जिला मिजस्ट्रेट, अलीगढ़ (डी.एम.) के समक्ष तारीख 2 जून, 2003 को एक आवेदन फाइल किया था । यह आवेदन तारीख 6 जून, 2003 को मंजूर कर लिया गया ।
- 5. जिनत्र तारीख 12 जुलाई, 2003 को 5,04,668.20/- रुपए की लागत से सिनेमा घर में लगाया गया था । याची इसकी लागत का आधा अर्थात् 2,40,088/- रुपए स्कीम की निबंधनों और शर्तों के अधीन समायोजित कराने का हकदार था ।
- 6. जिला मजिस्ट्रेट ने अपेक्षित जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् स्कीम के निबंधनों में अनुदान-सहायता मंजूर करते हुए तारीख 26 जुलाई, 2003/ 5 अगस्त, 2003 को एक आदेश पारित किया ।
- 7. अनुदान सहायता के रूप में याची द्वारा रोके गए मनोरंजन कर की रकम के संबंध पक्षकारों के बीच कुछ विवाद था । जिला मजिस्ट्रेट ने

तारीख 11/12 जनवरी, 2005 को एक आदेश पारित करते हुए यह निदेश दिया कि मनोरंजन कर की 1,23,640/- रुपए की रकम को जमा किया जाए क्योंकि याची द्वारा उसे गलत रूप से रोका गया है । अतः वर्तमान याचिका फाइल की गई है ।

अवधारण के लिए प्रश्न

- 8. हमने याची की ओर से श्री एम. के. गुप्ता और प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल को सुना । अवधारण के लिए उठाए गए प्रश्न निम्नलिखित हैं:—
 - (i) स्कीम के अधीन दावा किए गए फायदे के लिए आरंभिक बिन्दू क्या है ?
 - (ii) क्या बारह माह का मनोरंजन कर, जो याची द्वारा रोका गया है, मनोरंजन कर आधिक्य के रूप में विचार में लिया जा सकता है ?
 - (iii) क्या तारीख 11 जनवरी, 2005 का आदेश विधिक है ?

प्रथम प्रश्न : स्थापना की तारीख से फायदा

- 9. स्कीम का पैरा 5 (क) और पैरा 5 (ख) इस प्रकार है :-
- 5(क) इस योजना के अंतर्गत अनुदान का लाभ छविगृहों में संबंधित सुविधा की व्यवस्था कर लेने की तिथि के बाद से ही अनुमन्य होगा ।
- 5(ख) उपरोक्त अनुदान प्राप्त करने हेतु इच्छुक छविगृह स्वामी, प्रस्तावित निर्माण कार्य का विस्तृत आगणन जिला अधिकारी को प्रस्तुत करेगा ! जिला अधिकारी द्वारा आगणन स्वीकृत किये जाने के बाद निर्माण कार्य प्रारंभ किया जायेगा ! पत्र प्रारूप-1 में जिला अधिकारी को प्रस्तुत करके अनुदान स्वीकृत करने हेतु साथ-साथ प्रार्थना की जायेगी ! जिला अधिकारी द्वारा प्रारूप-11 में अनुदान स्वीकृत करने पर अनुदान उस तिथि से स्वीकृत माना जायेगा, जिस तिथि से निर्माण पूर्ण हो गया था ! अनुदान का आदेश जारी करने के पूर्व सिनेमा स्वामी से प्रारूप-11 में अनुबंध पत्र भराया जायेगा ।
- 10. पूर्वोक्त पैरा यह उपदर्शित करता है कि फायदा स्थापना/उन्निति की तारीख से आरंभ होना है ।

- 11. जिनत्र की स्थापना के पश्चात्, याची ने स्कीम के पैरा 5 (ख) के निबंधनों में एक आवेदन फाइल किया था । इस आवेदन पर, तारीख 26 जुलाई, 2003/5 अगस्त, 2003 को एक आदेश पारित किया गया था । इस आदेश में, यह भी उल्लिखित है कि याची स्थापना की तारीख से स्कीम का फायदा लेने का हकदार है यद्यपि वह पिछले वर्ष के मनोरंजन कर को जमा करने के पश्चात् केवल मनोरंजन कर के आधिक्य को रोक सकता है ।
- 12. जिला अधिकारी ने तारीख 1 फरवरी, 2004 से मनोरंजन कर के आधिक्य को रोकने के लिए याची को अनुज्ञात करते हुए तारीख 7 फरवरी, 2004 को एक आदेश पारित किया । यह आदेश गलत था । वस्तुतः याची स्थापना की तारीख अर्थात् 12 जुलाई, 2003 से तीन वर्ष के लिए मनोरंजन कर के आधिक्य को रोकने का हकदार था ।

द्वितीय प्रश्नः 12 माह का पूर्वगामी उन्नत

- 13. याची को स्कीम के अधीन "छवि गृह वर्ष" (फिल्म हॉल वर्ष) से मनोरंजन कर के आधिक्य में मनोरंजन कर से अगले तीन वर्षों में निवेश का आधा समायोजन करना था ।
- 14. "छवि गृह वर्ष" शब्दों को स्कीम में परिभाषित नहीं किया गया है । इस संबंध में कुछ भ्रम था । सरकार ने उसको स्पष्ट करते हुए दो अन्य सरकारी आदेश अर्थात् तारीख 17 नवम्बर, 2003 का आदेश (सरकारी आदेश 2003) और तारीख 3 अगस्त, 2004 का आदेश (सरकारी आदेश 2004) जारी किया था । 2003 के सरकारी आदेश में यह उल्लिखित किया गया था कि मनोरंजन कर के आधिक्य की तुलना वित्तीय वर्ष के साथ की जा सकती है ।
- 15. स्कीम के अधीन फायदा फिल्म हॉल को उन्नत किए जाने के लिए दिया जाना था । यह अपेक्षा की गई थी कि उन्नत टिकटों के विक्रय को बढ़ाकर और परिणामतः मनोरंजन कर के संग्रह को बढ़ाकर की जाएगी । इस कारण से निवेश का 50 प्रतिशत बढ़े हुए मनोरंजन कर को समायोजित किया जाना था । जहां यह कारण था वहां वित्तीय वर्ष में मनोरंजन कर के संग्रह के साथ तुलना करना उपयुक्त नहीं होगा; तुलना पूर्वगामी उन्नति वर्ष (12 माह) से की जाएगी । इसे सरकारी आदेश 2004 में भी स्पष्ट किया गया था । इस सरकारी आदेश का सुसंगत भाग इस प्रकार है:—

अतः पूर्व वर्ष का आशय उच्चीकर कराए जाने के समय से ठीक पहले के 12 माह ही होंगे, जिससे उच्चीकरण के कारण छविगृहों के अभिभोग दर में हुई वृद्धि का सही आंकलन किया जा सके तथा इस योजना की उपादेयता स्थापित हो सके।

- 16. 2004 का सरकारी आदेश स्कीम का आशय उपदर्शित करता है और यह स्पष्ट करता है कि तुलना स्थापना/उन्नित से ठीक पहले 12 माह में संगृहीत मनोरंजन कर के संग्रह के साथ की जानी चाहिए।
- 17. याची के मामले में जिनत्र तारीख 12 जुलाई, 2003 को स्थापित किया गया था और तुलना तारीख 12 जुलाई, 2002 से तारीख 11 जुलाई, 2003 के बीच संगृहीत मनोरंजन कर के साथ की जानी चाहिए ।

तृतीय प्रश्नः विनिश्चय करना आवश्यक नहीं

- 18. स्कीम के अधीन निवेश का आधा भाग स्थापना/उन्नित से अगले तीन वर्षों में समायोजित किया जाएगा । तथापि, आक्षेपित आदेश तीन वर्ष की समाप्ति से पूर्व पारित किया गया था । तीन वर्ष की अविध पूरी हो चुकी है और यदि यह आदेश सही भी हो तो भी इसका उपांतरण अपेक्षित है क्योंकि याची उस शेष अविध के लिए धनराशि रोकने का हकदार होगा जो आदेश पारित करने के समय शेष रह गई थी ।
- 19. पूर्वोक्त परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह न्याय हित में होगा कि जिला अधिकारी से पुनः विनिश्चय करने के लिए कहा जाए यदि कोई रकम तीन वर्ष की अवधि समाप्ति के पश्चात् भी देय है और यदि देय है तो उसे विधि के अनुसार वसूल किया जाएगा।

निष्कर्ष

- 20. हमारा निष्कर्ष इस प्रकार है :-
- (i) याची जनित्र की स्थापना की तारीख अर्थात् तारीख 12 जुलाई, 2003 से स्कीम का फायदा पाने का हकदार है ।
- (ii) मनोरंजन कर के आधिक्य की उन्नित की तारीख अर्थात् तारीख 12 जुलाई, 2003 से ठीक पहले के 12 मास के दौरान संगृहीत मनोरंजन कर के साथ तुलना की जाएगी ।
- (iii) याची केवल सहायता अनुदान के रूप में मनोरंजन कर के आधिक्य को रोक सकता है जो उसने स्थापना/उन्नति से 12 मास के मनोरंजन कर के पश्चात् जमा किया था ।

(iv) जिला अधिकारी पुनः विनिश्चय करेगा यदि कोई रकम तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् देय है ।

21. हमारे उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, तारीख 11/12 जनवरी, 2005 के आदेश को अभिखंडित किया जाता है । याची जिला अधिकारी के समक्ष तारीख 20 सितम्बर, 2010 के आरंभिक सप्ताह में आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ आवेदन कर सकता है । इस आवेदन में, वह पूर्वोक्त तीन वर्ष के लिए संगृहीत मनोरंजन कर और जमा के ब्यौरे भी उपाबद्ध करेगा । उसके पश्चात् जिला अधिकारी द्वारा याची को दिए गए फायदे की कुल रकम की पुनः संगणना करेगा । यदि फायदा देने के पश्चात् कोई रकम याची द्वारा देय या शेष बचती है तो उसे विधि के अनुसार वसूल किया जा सकता है । उपरोक्त मताभिव्यक्तियों के साथ रिट याचिका का निपटारा किया जाता है ।

तद्नुसार रिट याचिका का निपटारा किया गया ।

मही./मह.

(2012) 2 सि. नि. प. 30

इलाहाबाद

जवाहर लाल और एक अन्य

बनाम

उप-शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), मिर्जापुर और अन्य

तारीख 17 सितम्बर, 2010

न्यायमूर्ति अशोक भूषण और न्यायमूर्ति अरुण टंडन

उत्तर प्रदेश वर्ग-4 (समूह घ) कर्मचारी सेवा नियम, 1985 – नियम 6 और 10(4) [सपिटत उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय 3 का विनियम 2(1)] – समूह 'घ' कर्मचारी – प्रोन्नित – दफ्तरी के पद पर कार्यरत व्यक्ति को निरन्तर सेवा की अविध पर ध्यान दिए बिना लिपिक के पद पर प्रोन्नित किया जाना – दफ्तरी को संस्था के किसी अन्य चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी से अधिमानतः चतुर्थ श्रेणी संवर्ग में लंबी सेवा अविध होने पर भी लिपिक के रूप में प्रोन्नित किया जा सकता है।

याची जवाहर लाल तारीख 10 जनवरी, 1973 को उक्त संस्थान में,

चत्र्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था । याची सं. 2 उदय नारायण सिंह तारीख 24 अप्रैल, 1974 को चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 5 तारा सिंह सीधी भर्ती द्वारा दफ्तरी के पद पर नियुक्त किया गया था । तारीख 31 जुलाई, 2002 को संस्थान में लिपिक का एक पद रिक्त हुआ था । इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों के अध्याय-3 के विनियम 2 के अधीन, यह रिक्ति स्वीकृततः चतुर्थ श्रेणी वर्ग के लिए उपबंधित 50 प्रतिशत कोटे में आती है । उच्च वेतनमान में कार्यरत होने के आधार पर, तारा सिंह प्रत्यर्थी सं. 5 ने जिला विद्यालय निरीक्षक को लिपिक के पद पर प्रोन्नित के लिए एक अभ्यावेदन दिया था । जिला विद्यालय निरीक्षक ने तारीख 15 अक्तुबर, 2001 को एक आदेश पारित किया जिसमें कहा गया था कि तारा सिंह सभी चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों से वरिष्ठ है क्योंकि वह याचियों की तुलना में दफ्तरी के पद पर उच्चतर वेतनमान प्राप्त कर रहा है, जबकि वे समय के आधार पर उससे पूर्व नियुक्त किए गए थे, किन्तु निम्न वेतनमान में प्राप्त कर रहे हैं । जिला विद्यालय निरीक्षक के आदेश के आधार पर प्रबंध समिति ने तारा सिंह को सहायक लिपिक के रूप में प्रोन्नत किए जाने के लिए तारीख 3 जनवरी, 2002 को एक संकल्प पारित किया था । व्यथित होकर यह रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका तद्नुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – निर्दिष्ट निर्णय से यह अर्थ निकलता है कि यदि कानूनी नियम मौन हों तो उसी संवर्ग में कार्यरत सभी अर्हित व्यक्तियों की ज्येष्टता का अवधारण करने का मानदंड निरंतर सेवा की अवधि ही होगी (उस वेतनमान पर ध्यान नहीं दिया जाएगा जिसमें वे वेतन पा रहे हैं) । तथापि, उपरोक्त विधि के साधारण सिद्धांत से संबद्ध प्रश्न, यह है कि यद्यपि उच्च वेतनमान में रखे जाने के लिए प्रोन्नित भी एक मूल तत्व है, तथापि, इसके पश्चात उसी प्रवर्ग को उच्च वेतनमान में रखा गया व्यक्ति इस बात का हकदार है कि उसे, उस स्थिति को छोड़कर, जहां विशिष्ट रूप से ज्येष्ठता के नियमों द्वारा ऐसा घोषित किया जाए, निम्न वेतनमान में कार्यरत किसी व्यक्ति से ज्येष्ठ माना जाएगा । तारीख 20 नवम्बर, 1977 के शासकीय आदेश का जिसके द्वारा दफ्तरी के पद का सृजन किया गया था, तारीख 20 मई, 2001 के शासकीय आदेश और उपरोक्त 1985 के नियमों के साथ परिशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दफ्तरी का पद संस्थान में चत्र्थ श्रेणी में कार्यरत कर्मचारियों, अर्थात् चपरासी, फर्राश, संदेशवाहक आदि में से, प्रथमदृष्ट्या प्रोन्नति द्वारा भरा जाना चाहिए । दफ्तरी के पद के लिए 1986 के नियमों में एक अतिरिक्त अर्हता विहित की गई है अर्थात,

जिल्दसाजी का ज्ञान । दफ्तरी के पद के लिए स्वीकृत वेतनमान, चतुर्थ श्रेणी में कार्यरत कर्मचारियों से स्वीकृत वेतनमान से उच्चतर है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करते हुए कोई हिचिकचाहट नहीं हो रही है कि दफ्तरी के पद पर नियुक्ति, एक उच्चतर ग्रेड को गठित करती है और उसी संस्थान में निम्नतर वेतनमान में कार्यरत चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के उस संवर्ग में से प्रथमदृष्ट्या प्रोन्नति द्वारा ही भरी जानी चाहिए । दिए गए तथ्यों में एक स्थिति ऐसी भी हो सकती है जिसमें, दफ्तरी के पद पर प्रोन्नित के लिए अतिरिक्त अर्हता या अनुभव न होने के कारण चतुर्थ श्रेणी का कोई भी कर्मचारी उपलब्ध न हो । ऐसी स्थिति में सीधी भर्ती करनी होगी और ऐसी आकस्मिकता होने पर पदधारी को, पहले से ही कार्यरत चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के मुकाबले उच्चतर वेतनमान में रखा जाएगा । इसलिए, इन्हीं तथ्यों के आधार पर उसे उसी संवर्ग में उच्चतर वेतनमान में नियुक्त होने के कारण वरिष्ठ माना जाना चाहिए । यह न्यायालय विवाद्यक की भिन्न दृष्टिकोण से परीक्षा कर सकता है, अर्थात जब सबसे पहले दफ्तरी का पद रिक्त होता है तब चतुर्थ श्रेणी में वरिष्ठतम कर्मचारी को प्रोन्नति दी जानी चाहिए । चतुर्थ श्रेणी के वरिष्ठतम कर्मचारी की दफ्तरी के पद पर प्रोन्नित के मामले में तभी उपेक्षा की जा सकती है जब वह पद के लिए अयोग्य हो या उसके पास अतिरिक्त योग्यता न हो । उपरोक्त दोनों ही परिस्थितियों में, लंबी सेवा की अवधि होने पर भी उसे दफ्तरी के पद पर प्रोन्नत किए जाने से इंकार किया गया है। ऐसे किसी कर्मचारी को, जिसे दफ्तरी के पद पर प्रोन्नति देने से इंकार कर दिया गया हो, यह मानते हुए कि क्योंकि उसकी सेवा की अवधि सबसे लंबी है, उसे, उस व्यक्ति से जिसके सेवा की अवधि कम है, किंत् दावेदार की उपेक्षा करते हुए दफ्तरी के पद पर प्रोन्नत किया जा चुका था, वरिष्ठ मानते हुए लिपिक के पद पर प्रोन्नत किए जाने की मंजूरी नहीं दी जा सकती । यदि ऐसा अभिवाक स्वीकार कर लिया जाता है तो चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी को प्रोन्नित का वह लाभ मिल जाएगा, जिसे इससे पूर्व दफ्तरी के पद पर प्रोन्नति के लिए अयोग्य माना गया था, जो कि न्यायालय की राय में अऋजु और अनुचित होगा । उसी प्रकार जब किसी संस्थान में दफ्तरी का पद चतुर्थ श्रेणी में पहली बार सृजित किए जाने पर नियुक्ति कर दी जाती है तब वह अभ्यर्थी, जो कि ऐसा चयन किए जाने के पश्चात उच्चतर वेतनमान में आ जाता है, उसी चयन को दृष्टि में रखते हुए, निम्न वेतनमान में रखे गए अभ्यर्थी से वरिष्ठ माने जाने का हकदार है। इन परिस्थितियों में न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि दफ्तरी के पद

पर, जो कि उच्चतर ग्रेड का पद है और जो कि उसी संस्थान में कार्यरत चतुर्थ श्रेणी के कार्यरत कर्मचारियों में से प्रोन्नित द्वारा भरा जाने वाला पद है, पर नियुक्त किए गए व्यक्ति को किसी अन्य चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी से विष्ठ माना जाना चाहिए । अतः वह, इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों के अध्याय-3 के नियम 2(2) के अधीन संस्थान के किसी अन्य चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी से अधिमानतः चतुर्थ श्रेणी के संवर्ग में लंबी सेवा अविध होने के पर भी लिपिक के रूप में प्रोन्नित के लिए विचार किए जाने का हकदार है । (पैरा 25, 29, 30, 31, 32 और 33)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	2010 (1) ए. डी. जे. 403 : प्रधानाचार्य, आदर्श इंटर कालेज, उमरी, बिजनौर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य;	17
[2009]	(2009) 7 एस. सी. सी. 400 : हरियाणा राज्य और अन्य बनाम रामेश्वर दास;	21
[2006]	(2006) 2 एस. सी. सी. 670 : वेमारेड्डी कुमार स्वामी रेड्डी और एक अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य;	22
[2005]	2003 की रिट याचिका सं. 56751, तारीख 6 फरवरी, 2005 को विनिश्चित : राम जनम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य;	10
[2004]	2003 की रिट याचिका सं. 56756, तारीख 6 फरवरी, 2004 को विनिश्चित : राम जनम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य;	2
[2002]	2001 की रिट याचिका सं. 41618, तारीख 7 फरवरी, 2002 को विनिश्चित : सूर्यनाथ राम बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया;	2,10
[1998]	(1998) 9 एस. सी. सी. 450 : कमर जहां बनाम उत्तर प्रदेश लोक सेवा अधिकरण और अन्य;	21

[1996]	(1996) 10 एस. सी. सी. 166 : शीशराम और अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य	
	और अन्य ;	24
[1996]	(1996) 2 एस. सी. सी. 745 : हरि ओम वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ;	21
[1996]	(1996) 1 एस. सी. सी. 562 : राजस्थान राज्य बनाम फतेह चन्द सोनी ;	23,27
[1995]	1995 की रिट याचिका सं. 28699, तारीख 8 दिसम्बर, 1997 को विनिश्चित : हरि कान्त यादव बनाम उप-शिक्षा निदेशक, मेरठ	
	और अन्य ;	2,11
[1991]	(1991) एस. सी. सी. 544 : ए. के. भटनागर और अन्य बनाम भारत संघ	
	और अन्य ।	20

आरम्भिक (सिविल) रिट : 2003 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका अधिकारिता सं. 1199.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री राजेश कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री वी. के. सिंह, सी. के. राय, आर. के. त्रिपाठी, वीर सिंह, के. सी. विश्वकर्मा, पी. एन. सक्सेना, अमित सक्सेना और जी. के. सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक भूषण और न्यायमूर्ति अरुण टंडन ने दिया ।

निर्णय

बाबूराम के विद्वान् काउंसेल श्री शशि कुमार, याची जवाहर लाल के विद्वान् काउंसेल श्री राजेश कुमार को सुना । प्रत्यर्थी राज्य की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री वी. के. सिंह जिनकी विद्वान् स्थायी काउंसेल श्री सी. के. राय ने सहायता की. निजी प्रत्यर्थियों की ओर से श्री आर. के.

त्रिपाठी अधिवक्ता, श्री वीर सिंह अधिवक्ता, श्री के. सी. विश्वकर्मा और श्री पी. एन. सक्सेना वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री अमित सक्सेना अधिवक्ता ने की, को सुना ।

2. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अवेक्षा की कि इस न्यायालय के दो विनिश्चयों, अर्थात् सूर्यनाथ राम बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, बिलया जिसका राम जनम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामले में अवलंब लिया गया था तथा हरिकांत यादव बनाम उप-शिक्षा निदेशक, मेरठ और अन्य वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय के बीच विभेद होने के कारण तारीख 11 नवम्बर, 2005 के आदेश द्वारा मामले को वृहत्तर खंडपीठ द्वारा सुने जाने के लिए निर्दिष्ट किया गया था । यद्यपि, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश में विधि का कोई सारवान् प्रश्न विरचित नहीं किया तथापि, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् हमें यह प्रतीत होता है कि खंडपीठ द्वारा जिस प्रश्न का उत्तर दिया जाना है वह निम्नलिखत है:—

"क्या मान्यताप्राप्त इंटरमीडिएट कालेज में दफ्तरी के पद पर नियुक्त किए गए व्यक्ति को उसी संस्थान में कार्यरत अन्य चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों से सेवाकाल पर ध्यान दिए बिना, लिपिक के पद (तृतीय श्रेणी) में प्रोन्नति के लिए वरिष्ठ समझा जाएगा।"

- 3. अंतर्वलित विवाद्यक पर विचार करने के लिए यह उचित होगा कि 2003 की रिट याचिका सं. 1199 के अभिलेख में यथा उल्लिखित तथ्यों का वर्णन किया जाए ।
- 4. राष्ट्रीय इंटर कालेज, शेरपुर, जिला मिर्जापुर एक सहायताप्राप्त और मान्यताप्राप्त इंटरमीडिएट कालेज है (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'संस्थान' कहा गया है) । उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के उपबंधों के साथ-साथ उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कालेज (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1971 (जिसे इसमें इसके पश्चात् '1971 का अधिनियम' कहा गया है) के अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध पूर्णतः उक्त संस्थान के कर्मचारियों पर लागू

¹ 2001 की रिट याचिका सं. 41618, तारीख 7 फरवरी, 2002 को विनिश्चित ।

² 2003 की रिट याचिका सं. 56756, तारीख 6 फरवरी, 2004 को विनिश्चित ।

³ 1995 की रिट याचिका सं. 28699, तारीख 8 दिसम्बर, 1997 को विनिश्चित ।

होते हैं ।

- 5. याची जवाहर लाल तारीख 10 जनवरी, 1973 को उक्त संस्थान में, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था । याची सं. 2 उदय नारायण सिंह तारीख 24 अप्रैल, 1974 को चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 5 तारा सिंह सीधी भर्ती द्वारा दफ्तरी के पद पर (यह वह पद है जो कि चतुर्थ वर्ग में आने पर भी अब उच्च वेतनमान में है) नियुक्त किया गया था ।
- 6. यह अभिकथित किया गया है कि नियुक्ति की तारीख पर प्रत्यर्थी सं. 5 को, दफ्तरी के पद पर अनुज्ञेय मूल वेतनमान वही था जो कि अन्य चतुर्थ श्रेणी वर्ग को लागू होता था । तत्पश्चात् तारीख 10 अगस्त, 1978 के शासकीय आदेश के आधार पर दफ्तरी का वेतनमान 1 जुलाई, 1978 से बढ़ा दिया गया था । तारीख 1 जुलाई, 1978 से प्रत्यर्थी याची के मुकाबले में उच्चतर वेतनमान में कार्य कर रहा है ।
- 7. तारीख 31 जुलाई, 2002 को संस्थान में लिपिक का एक पद रिक्त हुआ था । इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों के अध्याय-3 के विनियम 2 के अधीन, यह रिक्ति स्वीकृतः चतुर्थ श्रेणी वर्ग के लिए उपबंधित 50 प्रतिशत कोटे में आती है । अध्याय-3 का विनियम 2 यह उपबंध करता है कि प्रोन्नित का मानदंड वरिष्ठता होगी, जिसमें अयोग्यता के आधार पर अस्वीकृत भी किया जा सकेगा ।
- 8. उच्च वेतनमान में कार्यरत होने के आधार पर, तारा सिंह प्रत्यर्थी सं. 5 ने जिला विद्यालय निरीक्षक को लिपिक के पद पर प्रोन्नित के लिए एक अभ्यावेदन दिया था । जिला विद्यालय निरीक्षक ने तारीख 15 अक्तूबर, 2001 को एक आदेश पारित किया जिसमें कहा गया था कि तारा सिंह सभी चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों से वरिष्ठ है क्योंकि वह याचियों की तुलना में दफ्तरी के पद पर उच्चतर वेतनमान प्राप्त कर रहा है, जबिक वे समय के आधार पर उससे पूर्व नियुक्त किए गए थे, किन्तु निम्न वेतनमान प्राप्त कर रहे हैं । जिला विद्यालय निरीक्षक के आदेश के आधार पर प्रबंध समिति ने तारा सिंह को सहायक लिपिक के रूप में प्रोन्नत किए जाने के लिए तारीख 3 जनवरी, 2002 को एक संकल्प पारित किया था ।
- 9. याची ने संतुष्ट न होने के कारण उप-शिक्षा निदेशक के समक्ष अपील फाइल की थी जिसमें नए सिरे से पक्षकारों की सुनवाई करके मामले को विनिश्चित करने के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक से अपेक्षा की

गई थी और तब तक के लिए तारीख 15 जनवरी, 2001 के जिला विद्यालय निरीक्षक के पूर्व आदेश को प्रस्थापित कर दिया गया था । पुनः, तारीख 27 फरवरी, 2002 को जिला विद्यालय निरीक्षक ने यह अभिनिर्धारित किया कि इसी आधार पर प्रत्यर्थी सं. 5 याची से वरिष्ठ है । याची ने पुनः अपील फाइल की, जो कि तारीख 2 नवम्बर, 2001 को नामंजूर कर दी गई थी । जिला विद्यालय निरीक्षक और उप-शिक्षा निदेशक दोनों के आदेशों के विरुद्ध यह रिट याचिका फाइल की गई है ।

- 10. याचियों की ओर से यह दलील दी गई है कि वे प्रत्यर्थी की नियुक्ति से बहुत पहले से स्वीकृत पद पर कार्यरत हैं और क्योंकि दफ्तरी का पद भी चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के उसी वर्ग का भाग है, इसलिए याचिकों को वरिष्ठ माना जाना चाहिए । इस दलील के समर्थन में याचियों ने सूर्यनाथ राम बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है । तत्पश्चात् यह निर्णय राम जनम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामले के निर्णय में निर्दिष्ट किया गया था ।
- 11. अपने उत्तर में प्रत्यर्थी सं. 5 ने यह प्रार्थना की कि चूंकि दफ्तरी के पद को उच्चतर वेतनमान लागू है, इसलिए उसे चतुर्थ श्रेणी वर्ग के अन्य कर्मचारियों से वरिष्ठ मानना चाहिए । इसके समर्थन में उसने हिरकान्त यादव बनाम उप-शिक्षा निदेशक, मेरठ और अन्य वाले मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है ।
- 12. इस न्यायालय ने तारीख 2 अप्रैल, 2010 को एक आदेश पारित करके स्थायी काउंसेल से इंटरमीडिएट कालेजों में दफ्तरी के पद के सृजन से संबंधित शासकीय आदेशों और उस पद पर नियुक्ति के नियमों की प्रतियां प्रस्तुत करने को कहा था।
- 13. न्यायालय के उक्त आदेश के उत्तर में निदेशक, माध्यमिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश ने एक प्रति शपथपत्र फाइल किया जिसमें कहा गया था कि अशासकीय सहायताप्राप्त सेकेंडरी संस्थानों में तारीख 20 नवम्बर, 1977 के शासकीय आदेश के अधीन दफ्तरी के पदों का सृजन किया गया था । तारीख 10 अगस्त, 1978 के शासकीय आदेश द्वारा यह पद समूह "घ" में

¹ 2001 की रिट याचिका सं. 41618, तारीख 7 फरवरी, 2002 को विनिश्चित ।

² 2003 की रिट याचिका सं. 56751, तारीख 6 फरवरी, 2005 को विनिश्चत ।

³ 1995 की रिट याचिका सं. 28699, तारीख 8 दिसम्बर, 1997 को विनिश्चत ।

वर्गीकृत किया गया था । तारीख 1 मई, 1978 में दफ्तरी के पद का ग्राह्य वेतनमान 170-225 रुपए नियत किया गया था, जबिक अन्य चतुर्थ श्रेणी के पदों को 165-215 रुपए का वेतनमान लागू किया गया था । पुनः यह वर्णित किया गया कि चतुर्थ वर्ग कर्मचारी सेवा नियमावली, 1975 के खंड-6 के अधीन दफ्तरी के पद को चपरासी और फर्राश में से प्रोन्नित द्वारा भरने के निदेश दिए गए थे, जो कि उसी चतुर्थ श्रेणी से संबद्ध हैं । निर्देशार्थ 1975 का नियम 6 नीचे वर्णित किया गया है :-

"6. चतुर्थ वर्ग के विभिन्न श्रेणियों के पदों पर भर्ती का स्रोत निम्नलिखित होगा —

(ख)	
(ग) दफ्तरी/जिल्दसाज/साइकलोस्टाइल	f

(ग) दफ्तरा/जिल्दसाज/साइकलास्टाइल आपरेटर (जिसका वेतनमान इस नियमावली के प्रारम्भ होने के समय 170-225 रुपए हैं)

(क)

(क)

शिक्षित चपरासियों, संदेशवाहकों या फर्राशों में से पदोन्नति द्वारा ।"

14. इसके अतिरिक्त, चतुर्थ वर्ग (समूह घ) कर्मचारी सेवा नियम, 1985 जो कि तारीख 1 जुलाई, 1986 से लागू हुए थे, के नियम 6 के अधीन, दफ्तरी के पद को चपरासी, संदेशवाहक/फर्राश के पद पर कार्यरत अर्हित कर्मचारियों में से प्रोन्नित द्वारा भरे जाने का उपबंध किया गया है। निर्देश हेतु नियम 6(ग) नीचे उल्लिखित किया गया है:—

"6. भर्ती का स्रोत – समूह "घ" के विभिन्न श्रेणियों के पदों पर भर्ती का स्रोत निम्नलिखित होगा –

\	
(ख)	
(ग) दफ्तरी/जिल्दसाज/	अर्ह चपरासियों, संदेशवाहकों
साइकलोस्टाइल आपरेटर	या फर्राशों में से पदोन्नति

द्वारा।"

15. 1985 के नियमों का नियम 10(4) दफ्तरी के पद के लिए एक अतिरिक्त अर्हता का भी उपबंध करता है, जो कि निम्नलिखित है:— "(4). कोई व्यक्ति दफ्तरी/जिल्दसाज के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा जब तक कि उसे जिल्दबाजी के कार्य का अपेक्षित ज्ञान और समुचित अनुभव न हो।"

16. राज्य सरकार ने यह अवेक्षा करने के पश्चात् कि विनियमों के अध्याय-3 के विनियम 2(1) के अधीन चतुर्थ श्रेणी के पदों पर नियुक्ति के लिए वही अनिवार्य अर्हताएं उपबंधित की गई हैं जो कि सरकारी कालेजों के कर्मचारियों के लिए उपबंधित की गई हैं, किंतु ऐसी नियुक्ति की प्रक्रिया उपबंधित नहीं की गई है, तारीख 11 मई, 2001 के शासकीय आदेश द्वारा यह अधिकथित किया कि तारीख 8 सितम्बर, 1986 की अधिसूचना, अर्थात्, समूह ''घ'' (प्रथम संशोधन) नियम, 1986 द्वारा लागू की गई प्रक्रिया ही लागू होगी और उपरोक्त प्रक्रिया के प्रतिकूल की गई किसी भी नियुक्ति को अनुमोदित नहीं किया जाएगा । उक्त सरकारी आदेश का अनुसरण हुए निदेशक ने तारीख 1 जून, 2001 को एक परिपन्न जारी किया था । निर्देशार्थ तारीख 11 मई, 2001 के शासकीय आदेश तथा निदेशक द्वारा जारी किए गए तारीख 1 जून, 2001 के पन्न को नीचे उद्धृत किया जा रहा है :—

"प्रेषक,

पी. के. झा, सचिव, (मा.) शिक्षा, उ. प्र. शासन

सेवा में.

शिक्षा निदेशक (मा.) उत्तर प्रदेश, लखनऊ

शिक्षा अनुभाग-12

विषय: अशासकीय सहायताप्राप्त माध्यमिक विद्यालयों में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की नियुक्ति की प्रक्रिया के संबंध में ।

महोदय,

माध्यमिक शिक्षा संशोधित अधिनियम-1921 के अध्याय तीन-विनियम-2(1) में यह व्यवस्था दी गयी है कि अशासकीय मान्यता प्राप्त सहायताप्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की न्यूनतम शैक्षिक योग्यता वही होगी जो राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के समकक्षीय कर्मचारियों के लिए समय-समय पर निर्धारित की गयी है, किन्तु अधिनियम में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के रिक्त पदों को भरने की प्रक्रिया स्पष्टरूप से वर्णित नहीं की गयी है।

- 2. यह स्पष्ट है कि अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों में शासन की उक्त, अधिसूचना संख्या-कार्मिक-2-2017— 1986-कार्मिक-2(1) लखनऊ, 8 सितंबर, 1986 द्वारा प्रस्तावित समूह घ (कर्मचारी सेवा प्रथम संशोधन) नियमावली, 1986 के प्राविधान प्रभावी है।
- 3. इस संबंध में यह भी कहने का निर्देश हुआ है कि प्रश्नगत नियमावली में दिए गए प्राविधानों के विपरीत की गई नियुक्तियों को किसी भी दशा में मान्य न किया जाये तथा नियमावली के उल्लंघन करके नियुक्त करने वाले प्रबंधक प्रधानाचार्य के विरुद्ध कार्यवाही सुनिश्चित की जावे । कृपया इस संबंध में अपने स्तर से सभी विभागीय अधिकारियों को दिशा निर्देश देने का कष्ट करें।
- 4. साथ ही उक्त प्राविधान संगत विनियम में निहित करने हेतु यथोचित प्रस्ताव भेजें ताकि इस कार्यवाही को विधिक रूप दिया जाये । इसे सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए यथा वांछित प्रस्ताव 20-5-2001 तक प्राप्त करायें ।

भवदीय

/=

(पी. के. झा)

सचिव, (मा.) शिक्षा"

चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की नियुक्ति प्रक्रिया

''प्रेषक,

शिक्षा निदेशक उत्तर प्रदेश,

शिक्षा सामान्य (1) तृतीय अनुभाग

इलाहाबाद ।

सेवा में.

मण्डलीय संयुक्त शिक्षा निदेशक उत्तर प्रदेश ।

पत्रांक : सामान्य (1) तृतीय/1044/1109/2001-02.

विषय: अशासकीय सहायताप्राप्त माध्यमिक विद्यालयों में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की नियुक्ति की प्रक्रिया के संबंध में । महोदय,

उपर्युक्त विषय की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हुए निवेदन है कि शासन ने अपने पत्र संख्या-693/15-12-2001-1601/(793)/2000 दिनांक 11.5.2001 द्वारा यह निर्देश दिया है कि माध्यमिक शिक्षा संशोधित अधिनियम 1921 के अध्याय तीन-विनियम-2(1) में यह व्यवस्था दी गई है कि अशासकीय सहायता प्राप्त/सहायताप्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की न्यूनतम शैक्षिक योग्यता वही होगी, जो राजकीय उच्चतम माध्यमिक विद्यालयों में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की न्यूनतम शैक्षिक योग्यता वही होगी, जो राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के समकक्षीय कर्मचारियों के लिए समय-समय पर निर्धारित की गयी है किंतु अधिनियम में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के रिक्त पदों के भरने की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं की गयी है । यह स्पष्ट है कि अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों में शासन की उक्त अधिसूचना संख्या-कार्मिक-2-2017-1986-कार्मिक-2 (1) लखनऊ, 8 सितंबर, 1986 द्वारा प्रख्यापित समूह "घ" कर्मचारी सेवा प्रथम-संशोधन नियमावली, 1986 से प्राविधान प्रभावी है ।

अतः शासन ने पत्र संख्या : 693/15-12-2001-1601/(793)/2000 दिनांक 11.5.2001 में दिये गये उक्त निर्देशानुसार कार्यवाही अंकित करायें तथा प्रश्नगत नियमावली में दिये गए प्राविधानों के विपरीत की गई नियुक्तियों को किसी भी दशा में मान्य न किया जाये तथा नियमावली का उल्लंघन करके नियुक्ति करने वाले प्रबन्धक/प्रधानाचार्य के विरुद्ध कार्यवाही सुनिश्चित की जाये ।

भवदीय

मित्र लाल, अपर शिक्षा निदेशक (मा.) ।"

17. इस प्रकार, सहायताप्राप्त और मान्यताप्राप्त इंटरमीडिएट कालेजों में, समूह "घ" के स्वीकृत पदों पर नियुक्ति के मामलों में अपनाई गई प्रक्रिया में आवश्यक निर्देश के लिए समूह "घ" नियम, 1986 लागू होते हैं । इससे संबद्ध विवाद्यक की हम में से एक (न्यायमूर्ति अरुण टंडन) ने परीक्षा की थी । प्रधानाचार्य, आदर्श इंटर कालेज, उमरी बिजनौर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इंटर कालेजों में समूह "घ" के पद पर नियुक्ति केवल 1986 के नियमों, (समय-समय पर यथा संशोधित) के अनुसार ही की जानी चाहिए । इस निर्णय को 2009 की विशेष अपील सं. 1851 प्रधानाचार्य, आदर्श इंटर कालेज, उमरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में जो कि तारीख 3 दिसंबर, 2009 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दी गई है, चुनौती दी गई थी ।

18. निदेशक की ओर से शपथ पत्र के पैरा 8 में यह आधार लिया गया है कि दफ्तरी के पद पर (जो कि एक समूह "घ" पद है) रिक्ति को भरने के लिए, निम्न वेतनमान में कार्यरत चतुर्थ श्रेणी में कार्य कर रहे कर्मचारियों को प्रोन्नत किया जाएगा और उसका मानदंड, जैसा कि ऊपर दृष्टव्य होता है, अयोग्यता के कारण अस्वीकृति के अध्यधीन ज्येष्ठता ही है।

19. इस पृष्ठभूमि में न्यायालय को परस्पर विरोधी दलीलों की परीक्षा करनी होगी ।

20. याचियों की ओर से यह दलील दी गई है कि इंटर मीडिएट संस्थानों में चतुर्थ श्रेणी (समूह "घ") में कार्यरत कर्मचारियों की समन्वित ज्येष्टता का अवधारण करने वाले मानदंडों के लिए उपबंधित कानूनी नियमों के अभाव में, सेवा की अवधि ही अवधार्य कारक हैं, जो कि मूल नियम (जिस ग्रेड में वे वेतन प्राप्त कर रहे हैं, इसपर विचार किए बिना) इस प्रयोजन के लिए ए. के. भटनागर और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य² वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया है, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:—

"7. यह स्पष्ट विधि है कि ज्येष्ठता सेवा का एक भाग है और जहां सेवा-नियम उसकी गणना की पद्धित विहित करते हैं, वहां वह उन्हीं नियमों द्वारा शासित होती है । ऐसे उपबंधों के अभाव में

¹ 2010(1) ए. डी. जे. 403.

² (1991) एस. सी. सी. 544.

साधारणतः सेवा की अवधि को ही गणना में लिया जाता है।"

21. कमर जहां बनाम उत्तर प्रदेश लोक सेवा अधिकरण और अन्य वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ज्येष्ठता सामान्यतः सेवा की निरंतर सेवा की अवधि पर आधारित होती है । इस संबंध में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित हरियाणा राज्य और अन्य बनाम रामेश्वर दास² और हरि ओम वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया गया है ।

22. याची की ओर से यह दलील दी गई है कि अधिनियमितियों के संबंध में आधारभूत नियम यह है कि यदि अधिनियमितियों की भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध है तो वहां जब तक कि उपबंध अर्थविहीन या शंकाप्रद अर्थ वाले न हों, न्यायालय कुछ शब्दों को जोड़ या प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है । वेमारेड्डी कुमार स्वामी रेड्डी और एक अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य वाला मामला देखिए ।

23. प्रत्यर्थियों की ओर से, **राजस्थान राज्य** बनाम **फतेह चन्द सोनी**⁵ वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का पूर्ण रूप से अवलंब लिया गया है, जिसके पैरा 8 में निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया है:—

"8. हमारी राय में यह अभिनिर्धारित करते हुए उच्च न्यायालय सही नहीं था कि सेवा में केवल उच्च पद पर आना ही प्रोन्नित होती है और किसी अधिकारी की उच्च वेतनमान में उसी पद पर नियुक्ति होने से प्रोन्नित का संघटक पूरा नहीं होता । साहित्यिक रूप में "प्रोन्नित" शब्द से "उच्च स्थिति, ग्रेड या सम्मान की अभिवृद्धि अभिप्रेत है ।" इसी प्रकार 'प्रोन्नित' का अर्थ "सम्मान, गरिमा, रैंक या ग्रेड में अधिमानता" से भी है (देखें-वेबस्टर की कंपरिहेंसिव डिक्शनरी, इंटरनेशनल एडीशन, पृष्ठ 1009)। इस प्रकार 'प्रोन्नित' का अर्थ उच्च स्थिति या रैंक की अभिवृद्धि से ही नहीं है अपितु यह किसी उच्च ग्रेड में अभिवृद्धि को भी विविक्षित करता है । सेवा विधि में भी 'प्रोन्नित'

¹ (1998) 9 एस. सी. सी. 450.

² (2009) 7 एस. सी. सी. 400.

³ (1996) 2 एस. सी. सी. 745.

^{4 (2006) 2} एस. सी. सी. 670.

^{5 (1996) 1} एस. सी. सी. 562.

अभिव्यक्ति का अर्थ किसी उच्च वेतनमान या उच्च पद को दर्शाता है (देखें-भारत संघ बनाम एस. एस. रानाडे, एस. सी. सी. पृष्ठ 468) ।"

24. शीशराम और अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का भी अवलंब लिया गया है।

25. हमारी राय में ऊपर निर्दिष्ट निर्णय से यह अर्थ निकलता है कि यदि कानूनी नियम मौन हों तो उसी संवर्ग में कार्यरत सभी अर्हित व्यक्तियों की ज्येष्ठता का अवधारण करने का मानदंड निरंतर सेवा की अविध ही होगी (उस वेतनमान पर ध्यान नहीं दिया जाएगा जिसमें वे वेतन पा रहे हैं) । तथापि, उपरोक्त विधि के साधारण सिद्धांत से संबद्ध प्रश्न, यह है कि यद्यपि उच्च वेतनमान में रखे जाने के लिए प्रोन्नित भी एक मूल तत्व है, तथापि, इसके पश्चात् उसी प्रवर्ग के उच्च वेतनमान में रखा गया व्यक्ति इस बात का हकदार है कि उसे, उस स्थिति को छोड़कर, जहां विशिष्ट रूप से ज्येष्ठता के नियमों द्वारा ऐसा घोषित किया जाए, निम्न वेतनमान में कार्यरत किसी व्यक्ति से ज्येष्ठ माना जाएगा ।

26. ऊपर वर्णित मामलों में याची की ओर से प्रोद्धृत किए गए मामलों में निर्धारित की गई विधिक स्थिति निस्संदेह उन मामलों से संबद्ध है जहां पदधारी विभिन्न ग्रेडों में उसी संवर्ग में कार्यरत थे, किंतु उसी संवर्ग के उच्चतर वेतनमान में रखे जाने पर मामले में प्रोन्नित का कोई मूलतत्व अंतर्वलित नहीं था।

27. **राजस्थान राज्य** बनाम **फतेह चन्द सोनी²** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने विशिष्टतः यह अभिनिर्धारित किया था कि उच्चतम वेतनमान में रखा जाना भी प्रोन्नति को गठित करता है ।

28. इसलिए, हम इस बारे में उन तथ्यों का परीक्षण करेंगे कि क्या चतुर्थ श्रेणी के संवर्ग में दफ्तरी के उच्चतर वेतनमान में रखे जाने पर, कर्मचारी को उच्चतर संवर्ग में निम्न वेतनमान में कार्यरत अन्य कर्मचारियों से वरिष्ठ माने जाने का अधिकार भी मिल जाता है।

29. तारीख 20 नवम्बर, 1977 के शासकीय आदेश का जिसके द्वारा दफ्तरी के पद का सृजन किया गया था, तारीख 20 मई, 2001 के शासकीय आदेश और उपरोक्त 1985 के नियमों के साथ परिशीलन करने

¹ (1996) 10 एस. सी. सी. 166.

² (1996) 1 एस. सी. सी. 562.

से यह स्पष्ट हो जाता है कि दफ्तरी का पद संस्थान में चतुर्थ श्रेणी में कार्यरत कर्मचारियों, अर्थात् चपरासी, फर्राश, संदेशवाहक आदि में से, प्रथमदृष्ट्या प्रोन्नित द्वारा भरा जाना चाहिए । दफ्तरी के पद के लिए 1986 के नियमों में एक अतिरिक्त अर्हता विहित की गई है अर्थात्, जिल्दसाजी का ज्ञान । दफ्तरी के पद के लिए स्वीकृत वेतनमान, चतुर्थ श्रेणी में कार्यरत कर्मचारियों से स्वीकृत वेतनमान से उच्चतर है ।

- 30. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए हमें यह अभिनिर्धारित करते हुए कोई हिचिकचाहट नहीं हो रही है कि दफ्तरी के पद पर नियुक्ति, एक उच्चतर ग्रेड को गठित करती है और उसी संस्थान में निम्नतर वेतनमान में कार्यरत चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के उस संवर्ग में से प्रथमदृष्ट्या प्रोन्नति द्वारा ही भरी जानी चाहिए।
- 31. दिए गए तथ्यों में एक स्थिति ऐसी भी हो सकती है जिसमें, दफ्तरी के पद पर प्रोन्नित के लिए अतिरिक्त अर्हता या अनुभव न होने के कारण चतुर्थ श्रेणी का कोई भी कर्मचारी उपलब्ध न हो । ऐसी स्थिति में सीधी भर्ती करनी होगी और ऐसी आकस्मिकता होने पर पदधारी को, पहले से ही कार्यरत चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के मुकाबले उच्चतर वेतनमान में रखा जाएगा । इसलिए, इन्हीं तथ्यों के आधार पर उसे उसी संवर्ग में उच्चतर वेतनमान में नियुक्त होने के कारण वरिष्ठ माना जाना चाहिए ।
- 32. यह न्यायालय विवाद्यक की भिन्न दृष्टिकोण से परीक्षा कर सकता है, अर्थात् जब सबसे पहले दफ्तरी का पद रिक्त होता है तब चतुर्थ श्रेणी में विरष्टितम कर्मचारी को प्रोन्नित दी जानी चाहिए । चतुर्थ श्रेणी के विरष्टितम कर्मचारी की दफ्तरी के पद पर प्रोन्नित के मामले में तभी उपेक्षा की जा सकती है जब वह पद के लिए अयोग्य हो या उसके पास अतिरिक्त योग्यता न हो । उपरोक्त दोनों ही परिस्थितियों में, लंबी सेवा की अविध होने पर भी उसे दफ्तरी के पद पर प्रोन्नित किए जाने से इंकार किया गया है । ऐसे किसी कर्मचारी को, जिसे दफ्तरी के पद पर प्रोन्नित देने से इंकार कर दिया गया हो, यह मानते हुए कि क्योंकि उसकी सेवा की अविध सबसे लंबी है, उसे, उस व्यक्ति से जिसके सेवा की अविध कम है, किंतु दावेदार की उपेक्षा करते हुए दफ्तरी के पद पर प्रोन्नित किया जा चुका था, वरिष्ठ मानते हुए लिपिक के पद पर प्रोन्नित किए जाने की मंजूरी नहीं दी जा सकती । यदि ऐसा अभिवाक् स्वीकार कर लिया जाता है तो चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी को प्रोन्नित का वह लाभ मिल जाएगा, जिसे इससे पूर्व दफ्तरी के पद पर प्रोन्नित के लिए अयोग्य माना गया था, जो

कि हमारी राय में अऋजु और अनुचित होगा । उसी प्रकार जब किसी संस्थान में दफ्तरी का पद चतुर्थ श्रेणी में पहली बार सृजित किए जाने पर नियुक्ति कर दी जाती है तब वह अभ्यर्थी, जो कि ऐसा चयन किए जाने के पश्चात् उच्चतर वेतनमान में आ जाता है, उसी चयन को दृष्टि में रखते हुए, निम्न वेतनमान में रखे गए अभ्यर्थी से वरिष्ठ माने जाने का हकदार है ।

33. इन परिस्थितियों में हमें यह प्रतीत होता है कि दफ्तरी के पद पर, जो कि उच्चतर ग्रेड का पद है और जो कि उसी संस्थान में कार्यरत चतुर्थ श्रेणी के कार्यरत कर्मचारियों में से प्रोन्नित द्वारा भरा जाने वाला पद है, पर नियुक्त किए गए व्यक्ति को किसी अन्य चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी से वरिष्ठ माना जाना चाहिए । अतः वह, इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों के अध्याय-3 के नियम 2(2) के अधीन संस्थान के किसी अन्य चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी से अधिमानतः चतुर्थ श्रेणी के संवर्ग में लंबी सेवा अवधि होने पर भी लिपिक के रूप में प्रोन्नित के लिए विचार किए जाने का हकदार है।

34. निर्दिष्ट प्रश्न पर हमारा उत्तर इस प्रकार है :-

दफ्तरी के पद पर नियुक्त व्यक्ति को मान्यताप्राप्त इंटरमीडिएट कालेजों में कार्यरत चतुर्थ श्रेणी के अन्य कर्मचारियों से वरिष्ठ मानना चाहिए, और उसी संस्थान में चतुर्थ श्रेणी में कार्यरत अन्य कर्मचारियों से, अधिमानतः लिपिक के पद पर प्रोन्नत किए जाने पर विचार किए जाने का हकदार है ।

35. हमारे द्वारा व्यक्त की गई राय को ध्यान में रखते हुए इस रिट याचिका को विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष विनिश्चय के लिए प्रस्तुत किया जाए ।

रिट याचिका तदनुसार निपटाई गई ।

भ./मह.

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लि.

बनाम

श्रीमती खातून और अन्य

तारीख 7 अक्तूबर, 2010

न्यायमूर्ति एस. पी. महरोत्रा और न्यायमूर्ति राजेश चन्द्र

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) — धारा 147, 149 और 163-क — दुर्घटना — प्रतिकर के लिए दावा — बीमा कंपनी द्वारा यह प्रतिरक्षा ली जानी कि बीमाकृत द्वारा जारी चैक का अनादरण होने के कारण बीमा कवर नोट रद्द कर दिया गया था — जहां ऐसे रद्दकरण की सूचना यातायात से संबंधित प्राधिकारी को न दी गई हो वहां बीमा कंपनी ऐसे रद्दकरण का फायदा नहीं ले सकती — बीमा कंपनी प्रतिकर के लिए दायित्वाधीन मानी जाएगी तथापि, बीमा कंपनी ऐसी धनराशि बीमाकृत से वसूल करने के लिए स्वतंत्र होगी।

अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील तारीख 25 मई, 1993 को लगभग 12.30 बजे दोपहर में हुई एक दुर्घटना में शमसुद्दीन की मृत्यु होने के कारण श्रीमती खातून (अब मृतक) (दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1) और इकबाल अहमद (दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा फाइल 2006 की मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं. 306 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, कानपुर देहात द्वारा तारीख 7 अगस्त, 2009 को पारित निर्णय और आदेश/पंचाट के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित — अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा उपरोक्त विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं । वर्तमान

मामले में, प्रश्नगत यान के संबंध में बीमा कवर नोट अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा तारीख 11 मई, 1993 से तारीख 10 मई, 1994 की अवधि के लिए जारी किया गया था । किस्त के संदाय के लिए प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा जारी किया गया चैक सेन्टल बैंक आफ इंडिया द्वारा तारीख 18 मई. 1993 को अनादरित कर दिया गया । उक्त चैक का अनादरण होने के पश्चात, अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने तारीख 19 मई, 1993 को प्रश्नगत यान के संबंध में जारी किया गया बीमा कवर नोट रद्द कर दिया । प्रश्नगत दुर्घटना तारीख 25 मई, 1993 को हुई थी । उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है । आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात अपीलार्थी-बीमा कंपनी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने के लिए सम्चित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समृचित निदेश प्राप्त करे । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे । (पैरा 43, 51, 64, 65 और 66)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

		1 (1
[2009]	2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355 : नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य;	46
	खुरशादा बाना आर अन्य;	46
[2009]	2009 (2) टी. ए. सी. 407 (इलाहाबाद) : नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम जितेन्द्र कुमार	
	और अन्य;	16,53
[2009]	2009 (4) टी. ए. सी. 382 (एस. सी.) : नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पर्वथनेनी	
	और अन्यः	58

[2009]	(2009) 13 एस. सी. सी. 608 : हरभजन सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन	य ; 60
[2008]	2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.) : प्रेम कुमारी और अन्य बनाम प्रहलाद देव और अन्य;	31,38
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.) : नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मी नारायण दत्त;	31,36,38
[2007]	2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद) : श्रीमती भूरी और अन्य बनाम श्रीमती शोभा रानी और अन्य;	45
[2005]	(2005) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) : नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती छल्ला भरथम्मा;	23,42
[2004]	[2004] 3 उम. नि. प. 24 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 : नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि. बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य;	31,34 37,38
[2004]	2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.) : ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम श्री नन्जप्पन और अन्य;	23,41
[2000]	2000 (1) टी. ए. सी. 1 (एस. सी.) : श्रीमती रनेहा दत्ता और अन्य बनाम एच. आर. टी. सी. और अन्य;	49,57
[1998]	ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588 : ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम इंद्रजीत कौर और अन्य ।	16,31,32
अपीली (सि	विल) अधिकारिता : 2009 की प्रथम अपील सं.	3217.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एस. सी. श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एम. आर. सिंह और एल. एम.

सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. पी. महरोत्रा और न्यायमूर्ति राजेश चन्द्र ने दिया ।

निर्णय

अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील तारीख 25 मई, 1993 को लगभग 12.30 बजे दोपहर में हुई एक दुर्घटना में शमसुद्दीन की मृत्यु होने के कारण श्रीमती खातून (अब मृतक) (दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1) और इकबाल अहमद (दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा फाइल 2006 की मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं. 306 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, कानपुर देहात द्वारा तारीख 7 अगस्त, 2009 को पारित निर्णय और आदेश/पंचाट के विरुद्ध फाइल की गई है।

- 2. इस दावा याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन किया गया है कि तारीख 25 मई, 1993 को मृतक शमसुद्दीन अन्य व्यक्तियों के साथ तिलक समारोह में शामिल होने के बाद एक ट्रैक्टर पर जिसका रिजस्ट्रेशन सं. यू पी 77ए-1013 है, गांव काशीपर, भौनारा, रूरा, कानपुर देहात से अपने गांव वापस आ रहा था और जब उक्त ट्रैक्टर दोपहर के लगभग 12.30 बजे जिला-कानपुर देहात, पुलिस स्टेशन बिल्लहौर के अन्तर्गत जी. टी. रोड पर निवादा गांव के नजदीक पहुंचा तो एक ट्रक के जिसका रिजस्ट्रेशन सं. यू एस ई 4795 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रश्नगत यान" कहा गया है), चालक ने उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाते हुए पीछे से आकर उक्त ट्रैक्टर को टक्कर मारी; और टक्कर के कारण, उक्त शमसुद्दीन को गंभीर क्षतियां पहुंचीं और परिणामस्वरूप उसकी घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई और ट्रैक्टर पर बैठे अन्य लोगों में से कुछ की मृत्यु हो गई और कुछ को गंभीर क्षतियां पहुंचीं; और दुर्घटना की रिपोर्ट पुलिस स्टेशन बिल्लहौर में दर्ज कराई गई थी, जो 1993 के मामला अपराध सं. 191 के रूप में रिजस्ट्रीकृत हुई थी।
- 3. दावा याचिका में अन्य बातों के साथ यह भी कथन किया गया है कि प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था और प्रश्नगत यान

का स्वामी एहतशाम अली था, जो वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी सं. 3 है ।

- 4. दावा याचिका में अन्य बातों के साथ यह भी अभिकथन किया गया है कि दुर्घटना के समय उक्त शमसुद्दीन की आयु लगभग 40 वर्ष थी और वह सिलाई का कार्य करता था जिससे वह 3,000/- रुपए की कमाई करता था ।
- 5. अपीलार्थी-बीमा कंपनी अर्थात् प्रश्नगत यान के बीमाकर्ता ने दावा याचिका का विरोध किया है ।
- 6. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने अन्य बातों के साथ अपने लिखित कथन में प्रश्नगत दुर्घटना होने से इनकार किया है । अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने वैकल्पिक रूप में यह अभिवाक् किया है कि प्रश्नगत यान के चालक के पास चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने यह भी अभिवाक् किया है कि प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत नहीं था क्योंकि प्रश्नगत यान का स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) ने चैक के माध्यम से बीमा-किस्त जमा की थी, जिसको अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने अपने खाते में जमा किया था किन्तु चैक अपर्याप्त निधि होने के कारण अनादित्त हो गया था और इस संबंध में जानकारी प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) को भेजी गई थी लेकिन उक्त स्वामी ने किस्त की धनराशि जमा नहीं की और इस प्रकार, अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) के पक्ष में अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जारी किए गए कवर नोट को रद्द कर दिया और इसकी सूचना अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने प्रश्नगत यान के स्वामी ने प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) को भेजी थी।
- 7. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने यह भी अभिवाक् किया है कि प्रश्नगत यान रिजस्ट्रेशन प्रमाणपत्र, फिटनेस प्रमाणपत्र और परिमट के बिना चलाया जा रहा था ।
- 8. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने यह भी अभिवाक् किया है कि दुर्घटना के समय, प्रश्नगत यान बीमाकृत नहीं था और प्रश्नगत यान के चालक के पास न तो चालन अनुज्ञप्ति थी और न ही प्रश्नगत यान के संबंध में विधिमान्य रिजस्ट्रेशन प्रमाणपत्र, फिटनेस प्रमाणपत्र और परिमट था और इसिलए, अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी नहीं है।
 - 9. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने यह भी अभिवाक् किया है कि प्रश्नगत

दुर्घटना पूर्वोक्त ट्रैक्टर के चालक की उपेक्षा के कारण हुई थी।

- 10. प्रश्नगत यान का स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) समन भेजे जाने के बावजूद मामले में उपस्थित नहीं हुआ और इसलिए, मामले में तारीख 21 नवम्बर, 2008 के आदेश द्वारा उसके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही करने का निदेश दिया गया।
 - 11. अधिकरण ने मामले में पांच विवाद्यक विरचित किए:-
 - क. विवाद्यक सं. 1 इस तथ्य के बारे में था कि क्या प्रश्नगत यान के चालक द्वारा यान उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण तारीख 25 मई, 1993 को लगभग 12.30 बजे दुर्घटना घटित हुई थी, जिसके द्वारा पूर्वोक्त ट्रैक्टर को जिसका रजिस्ट्रेशन सं. यू पी 77ए-1013 था टक्कर मारी गई थी जिसके कारण उक्त ट्रैक्टर में यात्रा करने वाले उक्त शमसुद्दीन को गंभीर क्षतियां पहुंचीं और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई।
 - ख. विवाद्यक सं. 2 यह था कि क्या पूर्वोक्त ट्रैक्टर का चालक उसे उपेक्षापूर्वक चला रहा था और क्या उक्त ट्रैक्टर का चालक प्रश्नगत दुर्घटना के संबंध में योगदायी उपेक्षा का दोषी था।
 - ग. विवाद्यक सं. 3 यह था कि क्या प्रश्नगत यान के चालक के पास प्रश्नगत दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी ।
 - घ. विवाद्यक सं. 4 यह था कि क्या प्रश्नगत यान दुर्घटना के समय अपीलार्थी-बीमा कंपनी से विधिक रूप से बीमाकृत था ।
 - ड. विवाद्यक सं. 5 यह था कि क्या दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 कोई प्रतिकर पाने के हकदार थे और यदि हां, तो ऐसे प्रतिकर की मात्रा क्या होगी और दावा याचिका में किस पक्षकार के विरुद्ध अवधारित की जाएगी।
- 12. दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने अपनी ओर से दो साक्षियों की परीक्षा कराई । अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने अपनी ओर से एक साक्षी की परीक्षा कराई ।
- 13. दावेदार प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने अन्य बातों के साथ-साथ दस्तावेजी साक्ष्य फाइल किए हैं जिनमें चिक रिपोर्ट की छायाप्रति, प्रश्नगत यान के संबंध में बीमा कवर नोट की छायाप्रति, आरोपपत्र की सत्यापित

प्रतियां, दुर्घटना स्थल का नक्शा, मृतक शमसुद्दीन के संबंध में पंचायतनामा और शव-परीक्षा रिपोर्ट, प्रश्नगत यान के संबंध में दुर्घटना जांच रिपोर्ट और उपर्युक्त ट्रैक्टर के संबंध में दुर्घटना जांच रिपोर्ट तथा चालक श्री कृष्ण की चालन अनुज्ञप्ति की छायाप्रति सम्मिलित हैं।

14. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने जो दस्तावेजी साक्ष्य फाइल किए हैं उनमें प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) को भेजे गए रिजस्ट्रीकृत पत्र की छाया प्रति, लिफाफे की छाया प्रति, सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया, कानपुर द्वारा की वापिस की गई मेमो की छाया प्रति, चैक की छाया प्रति और अनादिरत चैक की छाया प्रति सिम्मिलत हैं।

15. विवाद्यक सं. 1 और 2 का एक साथ विनिश्चय किया गया है :--

क. अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए विवाद्यक सं. 1 का सकारात्मक विनिश्चय किया है कि दुर्घटना प्रश्नगत यान के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप उक्त शमसुद्दीन को पूर्वोक्त ट्रैक्टर में यात्रा करते हुए गंभीर क्षतियां पहुंचीं और उक्त क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

ख. अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए विवाद्यक सं. 2 का नकारात्मक उत्तर दिया है कि यह साबित नहीं हुआ है कि प्रश्नगत दुर्घटना में उक्त ट्रैक्टर के चालक की ओर से कोई योगदायी उपेक्षा हुई है।

ग. अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए विवाद्यक सं. 3 का सकारात्मक विनिश्चय किया है कि प्रश्नगत यान का चालक श्री कृष्ण था और उसके पास उस तारीख को और प्रश्नगत दुर्घटना के समय प्रश्नगत यान के चलाने के लिए विधिमान्य और प्रभावी अनुज्ञप्ति थी।

घ. अधिकरण ने विवाद्यक सं. 4 के संबंध में यह उल्लेख किया है कि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से प्रश्नगत यान के संबंध में फाइल बीमा कवर नोट की छाया प्रति से यह दर्शित होता है कि प्रश्नगत यान तारीख 11 मई, 1993 से तारीख 10 मई, 1994 की अविध के लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था । अधिकरण ने यह भी उल्लेख किया कि 2,185/- रुपए का चैक प्रश्नगत यान के बीमे की किस्त के संदाय हेतु अपीलार्थी-बीमा कंपनी

के पक्ष में प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा जारी किया गया था और उक्त चैक के आधार पर, अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने प्रश्नगत यान के संबंध में बीमा कवर नोट जारी किया था । अधिकरण ने यह भी उल्लेख किया कि उक्त चैक को अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने अपने खाते में जमा किया था किन्तु उक्त चैक को प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) के खाते में अपर्याप्त निधि के कारण सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया ने तारीख 18 मई, 1993 को अनादिरत कर दिया था । उक्त चैक का अनादरण होने के बाद, अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने प्रश्नगत यान के संबंध में जारी किए गए बीमा कवर नोट को रद्द कर दिया और इस संबंध में अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने तारीख 19 मई, 1993 को रिजस्ट्रीकृत डाक द्वारा प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) को सूचना भेजी थी ।

16. उक्त तथ्यों का उल्लेख करते हुए, अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि बीमा कवर नोट (कागज सं. 8-ग) की छाया प्रति से यह दर्शित होता है कि प्रश्नगत यान तारीख 11 मई, 1993 से तारीख 10 मई, 1994 की अवधि के लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था और चुंकि प्रश्नगत दुर्घटना तारीख 25 मई, 1993 को हुई थी, इसलिए बीमा कवर नोट से यह दर्शित होता है कि प्रश्नगत यान प्रश्नगत दुर्घटना की तारीख को बीमाकृत था । अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अभि. सा. 1 (कैलाश उपाध्याय) के कथन के अनुसार, चैक के अनादरण के संबंध में जानकारी प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) को भेजी गई थी किन्तु यह साबित नहीं हो पाया है कि चैक के अनादरण संबंधी जानकारी क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी के कार्यालय को भेजी गई थी । इसलिए, अधिकरण ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ओरियंटल इंश्योरेंस कं. लि. बनाम **इन्द्रजीत कौर और अन्य** वाले मामले और इस न्यायालय द्वारा **नेशनल** इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम जितेन्द्र कोर और अन्य² वाले मामले में दिए गए विनिश्चयों का अवंलब लेते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के अपने उत्तरदायित्व से छुटकारा नहीं पा सकती ।

अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अभि. सा. 1
 (कैलाश उपाध्याय) के कथन और पत्र और डाक रसीद (कागज सं. 48-ग

¹ ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

² 2009 (2) टी. ए. सी. 407 (इलाहाबाद).

और 49-ग) की छाया प्रतियों से यह दर्शित होता है कि चैक के अनादरण संबंधी जानकारी अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) को भेजी थी लेकिन यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं है कि प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) ने किस्त का संदाय पुनः किया था, और इसलिए यह स्पष्ट होता है कि प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) ने संविदा के अधीन अपनी जिम्मेदारी को पूरा नहीं किया । इन परिस्थितियों में, अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह उचित था कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रश्नगत दुर्घटना के संबंध में अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा संदत्त प्रतिकर की धनराशि वसूल करने का अधिकार दिया जाए।

- 18. विवाद्यक सं. 5 के संबंध में, अधिकरण ने मृतक शमसुद्दीन की आय 18,000/- रुपए वार्षिक निर्धारित की । उक्त मृतक शमसुद्दीन के व्यक्तिक खर्चे के लिए एक तिहाई रकम कम करते हुए, वार्षिक निर्भरता के रूप में 12,000/- रुपए संगणित किए हैं । प्रश्नगत दुर्घटना के समय मृतक शमसुद्दीन की आयु 50 वर्ष मानते हुए, 11 के गुणक का अनुसरण किया है और मोटर यान अधिनियम, 1988 की द्वितीय अनुसूची के अनुसार 2,000/- रुपए दफ़न खर्चे के लिए अधिनिर्णीत किए हैं ।
- 19. तद्नुसार, अधिकरण ने तारीख 1 जनवरी, 2008 से प्रतिकर की धनराशि के संदाय तक 7 प्रतिशत वार्षिक की दर से साधारण ब्याज सहित 1,34,000/- रुपए अधिनिर्णीत किए ।
- 20. अधिकरण ने प्रतिकर के संदाय के दायित्व के संबंध में, विवाद्यक सं. 4 के संबंध में दिए गए अपने निष्कर्ष को दोहराते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिकर संदाय का आरंभिक दायित्व अपीलार्थी-बीमा कंपनी का था और अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से संदत्त प्रतिकर की धनराशि वसूल करने का अधिकार होगा।
- 21. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एस. सी. श्रीवास्तव को सुना और अपील के साथ फाइल किए गए अभिलेख का परिशीलन किया ।
- 22. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एस. सी. श्रीवास्तव ने यह दलील दी कि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि पूर्वोक्त प्रश्नगत यान का स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) प्रश्नगत यान के बीमें की संविदा के अधीन अपने दायित्व को पूरा करने में असफल रहा है, प्रतिकर की धनराशि का संदाय करने के लिए अपीलार्थी बीमा कंपनी को

निदेश देने में और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का आदेश करने में गलती की है।

23. श्री एस. सी. श्रीवास्तव ने यह दलील दी कि किसी भी दशा में अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 3 है) के विरुद्ध उचित रूप से सुरक्षित किया जाना चाहिए था ताकि आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर का संदाय करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी उपर्युक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने में समर्थ हो सके । श्री एस. सी. श्रीवास्तव ने इस संबंध में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया है:—

- 1. ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम श्री नन्जप्पन और अन्य¹;
 - 2. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम श्रीमती छल्ला भरथम्मा²;
- 24. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एस. सी. श्रीवास्तव द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया ।
- 25. जहां श्री एस. सी. श्रीवास्तव द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अधिकरण ने प्रतिकर का संदाय करने के लिए और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए बीमा कंपनी को निदेश करने में गलती की है, इस संबंध में मोटर यान अधिनियम, 1988 के सुसंगत उपबंधों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा।
- 26. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 की उपधारा (5) इस प्रकार है :--
 - "147. पालिसियों की अपेक्षाएं तथा दायित्व की सीमाएं (1) से (4)
 - (5) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई बीमाकर्ता जो इस धारा के अधीन बीमा पालिसी देता है, उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है।"

¹ 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

² (2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.).

27. इस प्रकार, उपर्युक्त उपबंध यह उपबंधित करता है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा की पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है।

28. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 में जहां तक यह सुसंगत है, निम्नलिखित उपबंधित है :—

"149. पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के विरुद्ध हुए निर्णयों और अधिनिर्णयों की तृष्टि करने का बीमाकर्ताओं का कर्तव्य - (1) यदि किसी व्यक्ति के पक्ष में, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिए जाने के पश्चात्, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्व के संबंध में (जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है) {या धारा 163-क के उपबंधों के अधीन है} ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय और अधिनिर्णय अभिप्राप्त कर लिया जाता है जिसका पालिसी द्वारा बीमा किया हुआ है तो इस बात के होते हुए भी कि बीमाकर्ता पालिसी को शून्य करने या रद्द करने का हकदार है अथवा उसने पालिसी शून्य या रद्द कर दी है, बीमाकर्ता इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति को, उस दायित्व के संबंध में उसके अधीन देय राशि, जो बीमाकृत राशि से अधिक न होगी, खर्चों की बाबत देय किसी रकम तथा निर्णयों पर ब्याज संबंधी किसी अधिनियमिति के आधार पर उस राशि पर ब्याज की बाबत देय किसी धनराशि सहित इस प्रकार देगा मानो वह निर्णीत-ऋणी हो ।

(2) से (7).....।"

29. उपर्युक्त उद्धृत उपबन्ध से यह दर्शित होता है कि यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनिधक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ

दायित्व के संबंध में निर्णीत-ऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो ।

- 30. उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी/अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है, उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है।
- 31. उपरोक्त निष्कर्ष माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों द्वारा समर्थित है :—
 - 1. ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम इंद्रजीत कौर और अन्य¹
 - 2. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य²
 - 3. नेशनल इंश्योरेंस कं. लि. बनाम लक्ष्मी नारायण दत³
 - प्रेम कुमारी और अन्य बनाम प्रहलाद देव और अन्य⁴
- 32. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि**. बनाम **इंद्रजीत कौर और अन्य**⁵ वाले मामले में मत व्यक्त किया है :—

"7. अतः, हमारे समक्ष यही स्थिति है । बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64-फख द्वारा सृजित वर्जन के बावजूद अपीलार्थी, प्राधिकृत बीमाकर्ता ने बस के लिए प्रीमियम प्राप्त किए बिना बीमा पालिसी जारी कर दी थी । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 (5) और धारा 149(1) के उपबंधों के आधार पर अपीलार्थी उस दायित्व के संबंध में तृतीय पक्षकार की जिसके लिए पालिसी ली गई थी, क्षितपूर्ति के लिए और इसकी हकदारी होते हुए भी उसके संबंध में प्रतिकर के अधिनिर्णयों का समाधान करने के लिए दायी है, (जिस

¹ ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

² [2004] 3 उम. नि. प. 24 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

³ (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

^{4 2008 (1)} टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

⁵ ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

पर हम कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं) भले ही वह इस कारण से पालिसी से इनकार करे या रद्द कराए कि प्रीमियम के संदाय में जारी चैक का आदरण नहीं हुआ था।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

33. इस प्रकार, यह विनिश्चय, मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147(5) और 149(1) के आधार पर उपर्युक्त उल्लिखित निष्कर्ष का समर्थन करता है ।

34. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य¹ वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :-

"105. इन याचिकाओं में उठे विभिन्न विवाद्यकों से संबंधित हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है –

- (i) मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 11 जिसमें पर-व्यक्तियों के जोखिमों के विरुद्ध यानों के अनिवार्य बीमा के लिए उपबंध है, मोटर यानों के प्रयोग के द्वारा कारित दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर द्वारा अनुतोष प्रदान करने के लिए एक समाज कल्याणकारी विधान है । सभी यानों का अनिवार्य बीमा सुरक्षा उपबंध इस सर्वोपिर उद्देश्य की दृष्टि से है और अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन उक्त उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए किया जाना चाहिए।
- (ii) बीमाकर्ता मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क या धारा 166 के अधीन फाइल दावा याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(क)(ii) के निबंधनों के अनुसार प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का हकदार है।
- (iii) बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए पालिसी की शर्त का भंग अर्थात् अधिनियम की धारा 149 की उपधारा 2(क)(ii) में यथाअंतर्विष्ट चालक अयोग्यता या चालक द्वारा अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को बीमाकृत व्यक्ति द्वारा किया गया साबित होना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का न होना, उसका जाली या अविधिमान्य होना या सुसंगत समयबिंदु पर

¹ [2004] 3 उम. नि. प. 24 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

यान चालन के लिए चालक की अयोग्यता स्वयमेव ही बीमाकृत व्यक्ति या पर-व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिस्क्षाएं नहीं हैं । बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध अपने दायित्व से बचने के लिए बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत व्यक्ति उपेक्षा का दोषी था और वह सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त चालक या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो सुसंगत समय पर यान के चालन के लिए अयोग्य नहीं था, यानों के प्रयोग के संबंध में पालिसी की शर्तों को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में विफल रहा ।

- (iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने दायित्व को टालने के लिए न केवल उक्त कार्यवाहियों में उपलब्ध प्रतिस्क्षा(ओं) को सिद्ध करना चाहिए अपितु यान के स्वामी की ओर से 'भंग' को भी सिद्ध करना चाहिए; जिसके सबूत का भार उन पर होगा।
- (v) न्यायालय इस प्रकार का कोई मानदंड अधिकथित नहीं कर सकता है कि उक्त भार का किस प्रकार निर्वहन किया जाएगा क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।
- (vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने या सुसंगत अविध के दौरान यान चालन की अपनी अर्हता से संबंधित पालिसी की शर्त से संबंधित बीमाकृत व्यक्ति के भंग को साबित कर देता है तो उसे (बीमाकर्ता को) उस समय तक बीमाकृत व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व को टालने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के उक्त भंग इतने मौलिक न हों कि वे दुर्घटना से संबंधित पाए जाएं । पालिसी की शर्तों का निर्वचन करते समय अधिकरण अधिनियम की धारा 149(3) के अधीन बीमाकृत व्यक्ति को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं को अनुज्ञात करने से संबंधित मूल भंग की संकल्पना और मुख्य प्रयोजन के नियम को लागू करेगा ।
- (vii) यह प्रश्न कि क्या स्वामी ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि क्या चालक द्वारा प्रस्तुत चालन अनुज्ञप्ति (जाली अनुज्ञप्ति या अन्यथा) विधि की अपेक्षा

को पूरा नहीं करती है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर अवधारित किया जाएगा ।

- (viii) यदि दुर्घटना के समय यान ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति थी तो बीमा कंपनियां डिक्री की तुष्टि करने की दायी होंगी।
- (ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण मोटर यान के प्रयोग के कारण होने वाली दुर्घटनाओं, जिनमें पर-व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या उसकी संपत्ति को नुकसान अंतर्वलित होता है, के संबंध में सभी दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम है। अधिकरण की उक्त शक्ति एक ओर दावाकर्ता या दावाकर्ताओं और दूसरी ओर बीमाकृत व्यक्ति बीमाकर्ता और चालक के मध्य के आंतरिक दावों का विनिश्चय करने तक निर्बंधित नहीं है । प्रतिकर के दावे का न्यायनिर्णयन और बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षा या प्रतिरक्षाओं की उपलब्धता का विनिश्चय करने के दौरान अधिकरण को बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर विवादों का विनिश्चय करने के लिए आवश्यक रूप से शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है । दावाकर्ता द्वारा प्रतिकर के दावे के न्यायनिर्णयन और इस पर किए गए अधिनिर्णय के दौरान बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर दावों और विवादों पर दिया गया विनिश्चय दावाकर्ताओं के पक्ष में अधिनिर्णय के प्रवर्तन और निपादन के लिए अधिनियम की धारा 174 में यथाउपबंधित रीति में प्रवर्तनीय और निष्पादनीय है ।
- (x) जहां अधिनियम के अधीन दावे का न्यायनिर्णयन करने पर अधिकरण का यह निष्कर्ष हो कि बीमाकर्ता ने उपधारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के उपबंधों के अनुसार अपनी प्रतिरक्षा को संतोषप्रद रूप से साबित कर दिया है, जैसािक इस न्यायालय द्वारा ऊपर निर्वचन किया गया है, वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर के और उन धनरािशयों के संबंध में जिनका संदाय करने के लिए उस अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए उस अधिकरण द्वारा किया गया है बीमाकृत व्यक्ति को प्रतिपूर्ति करे। अधिकरण द्वारा दावे का इस प्रकार अवधारण प्रवर्तनीय होगा

और बीमाकृत व्यक्ति से बीमाकर्ता को देय ठहराई गई धनराशि राजस्व के रूप में अधिनियम की धारा 174 के अधीन दी गई रीति में अधिकरण द्वारा कलक्टर को जारी प्रमाणपत्र पर वसूल की जाएगी । प्रमाणपत्र भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली के लिए केवल तभी जारी किया जाएगा जैसा कि अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (3) द्वारा यथाअपेक्षित है, जब बीमाकृत व्यक्ति अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख से बीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने में असफल रहता है ।

(xi) उपधारा (4) के परंतुक के साथ इसके उपबंधों और उपधारा (5) जिनमें बीमाकृत व्यक्ति की ओर से बीमा की संविदा के अधीन संदत्त धनराशि वसूल करने के लिए बीमाकर्ता को समर्थ बनाने के लिए इसमें उल्लिखित विनिर्दिष्ट आकस्मिकता आशयित है का आश्रय अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है और इन्हें ऐसे मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पारस्परिक दावों के न्यायनिर्णयन में विलंब होगा, बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता की प्रतिरक्षाओं और दावों को नियमित न्यायालय में उपचार माना जा सकता है।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

35. प्रतिपादना संख्या (vi) और (x) से जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है, इस निष्कर्ष को समर्थन मिलता है कि वर्तमान मामले में आक्षेपित अधिनिर्णय में अधिकरण द्वारा दिया गया निदेश विधि अनुसार है।

36. नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि. बनाम लक्ष्मी नारायण दत्त¹ वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य² वाले मामले में दिए गए विनिश्चय पर विचार करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया :—

"35. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पर-व्यक्ति के अधिकार और निजी नुकसान के मामलों के बीच वैचारिक संकल्पनात्मक

¹ (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

² [2004] 3 उम. नि. प. 24 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

मतभेदों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । आरंभिक रूप से, यह साबित करने का भार बीमाकर्ता पर होता है कि विज्ञप्ति जाली थी । यदि एक बार यह साबित हो जाता है तो नैसर्गिक परिणाम उत्पन्न होंगे ।

उपरोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –

- (1) स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय पर-व्यक्ति जोखिम वाले मामलों के अतिरिक्त अन्य मामलों में लागू नहीं होता ।
- (2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली थी वहां नवीकरण अन्तर्निहित दोष को दूर नहीं कर सकता है।
- (3) पर-व्यक्ति जोखिम के मामले में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और जहां ऐसा हो, वहां बीमाकृत से उसे वसूल भी किया जा सकता है।
- (4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों को लागू नहीं होती ।

उच्च न्यायालय/आयोग, विधि की स्थिति के प्रकाश में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मामले पर नए सिरे से विचार करेगा ।

अपीलें खर्चों के बारे में कोई आदेश पारित किए बिना उपर्युक्त रूप में स्वीकार की जाती हैं।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

37. उपर्युक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य वाले मामले में दिया गया विनिश्चय तृतीय पक्षकार के जोखिम के मामले में लागू होता है और बीमाकर्ता को तृतीय पक्षकार को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और इसके पश्चात बीमाकृत से इस रकम को वसूल किया जा सकता है।

38. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**² वाले मामले

¹ [2004] 3 उम. नि. प. 24 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

² 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मी नारायण दत्त¹ वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट करते हुए नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट किया है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है:—

"8. स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के प्रभाव और विवक्षा (तात्पर्य) और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले में हममें से एक (न्यायमूर्ति डाक्टर अरिजीत पसायत) ने विचार करते हुए स्पष्ट किया है । पैरा 38 में निकाला गया निम्नलिखित निष्कर्ष सूसंगत हैं –

'38. उपरोक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं —

- (1) स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों को छोड़कर अन्य किसी मामले में कोई उपयोग नहीं है।
- (2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली है, वहां नवीकरण अन्तर्निहित दोष दूर नहीं हो सकता ।
- (3) तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और यदि ऐसा उपदर्शित किया है तो वह बीमाकृत से उसकी वसूली कर सकता है।
- (4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना का अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों में कोई उपयोग नहीं होता ।'
- 9. ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** मीना वारीयान और अन्य [(2007) 5 एस. सी. सी. 428 = 2007 (2) टी. ए. सी. 417] वाले मामले में दिया गया पश्चात्वर्ती विनिश्चय, जो दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय है, स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों पर विचार करते हुए निष्कर्ष निकाला गया कि किसी ऐसे मामले में जहां कोई व्यक्ति

 $^{^{1}}$ (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

अधिनियम अर्थांतर्गत तृतीय पक्ष नहीं है, बीमा कंपनी को केवल स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर अपने आप दायी नहीं बनाया जा सकता । ऐसा निष्कर्ष निकालते हुए न्यायालय ने लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले के पैरा 38 में उल्लिखित विश्लेषण को उद्धृत किया और उसके साथ सहमति व्यक्त की । हम संगतता को दृष्टि में रखते हुए स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्वचन और प्रयोजनीयता को ध्यान में रखते हुए लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांत को दोहराते हैं।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

39. उपरोक्त विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं।

40. जहां तक श्री एस. सी. श्रीवास्तव द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 3 है) के विरुद्ध संरक्षित होना चाहिए जिससे कि यदि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर की धनराशि नकद रूप में जमा करे तो वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके, इस संबंध में श्री एस. सी. श्रीवास्तव द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों का निर्देश करना प्रासंगिक है।

41. ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम श्री नन्जप्पन और अन्य¹ वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:—

"7. अतः हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए बलजीत कौर [2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.)] वाले मामले में अभिव्यक्त मत के निबंधनों में यह निदेश करते हैं कि बीमाकर्ता अधिकरण द्वारा नियत किए गए उस प्रतिकर के परिमाण का आज से तीन मास के भीतर संदाय करेगा जिसके संबंध में प्रत्यर्थियों-दावाकर्ताओं ने कोई विवाद नहीं किया है । बीमाकर्ता से उसे वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को वाद फाइल करने की

^{1. 2004 (2)} टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

आवश्यकता नहीं होगी । वह निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण की विषयवस्तु से संबंधित विवाद बीमाकर्ता और स्वामी के बीच था और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया है । बीमाकृत को धनराशि के जारी करने से पहले यान के स्वामी को नोटिस जारी किया जाएगा और उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभृति दाखिल करने की अपेक्षा की जाएगी जिसका बीमाकर्ता दावाकर्ताओं को संदाय करेंगे । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि निष्पादन न्यायालय आवश्यक समझे तो वह संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता ले सकता है । निष्पादन न्यायालय उस रीति के बारे में विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें बीमाकृत यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस मामले में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला होगा कि वह प्रतिभृतियों के निपटान द्वारा या बीमाकृत यान के स्वामी की किसी अन्य संपत्ति या संपत्तियों से वसूलने का निदेश करे । अपील का उपर्युक्त निबंधनों में निपटान किया जाता है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

42. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम श्रीमती छल्ला भरथम्मा वाले मामले में इस प्रकार अधिकथित किया गया है :-

"प्रश्न यह रहता है कि समुचित निदेश क्या होगा । अधिनियम के फायदा संबंधी उद्देश्य पर विचार करते हुए बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई उत्तरदायित्व न हो । कुछ मामलों में बीमाकर्ता को बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है । स्वामी से संदेय धनराशि वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता से वाद फाइल करने की अपेक्षा नहीं की गई है । वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण करने के लिए संबंधित विवाद्यक की विषयवस्तु विवाद्यक बीमाकर्ता और स्वामी के बीच हो

^{1 (2004) 8} एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 2 (एस. सी.).

और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया हो । दावाकर्ताओं के लिए धनराशि को निर्मुक्त करने से पूर्व दुर्घटना से संबंधित यान का स्वामी उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देगा जो बीमाकर्ता दावेदारों को देगा । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि आवश्यकता हुई तो निष्पादन न्यायालय संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता लेगा । निष्पादन न्यायालय विधि के अनुसार उस रीति के बारे में समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस संबंध में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय यान के स्वामी अर्थात् बीमाकृत की प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से वसूली करने के लिए निदेश देगा । वर्तमान मामले में हम अन्तर्वलित धनराशि की मात्रा पर विचार करते हुए इस विनिश्चय को बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ते हैं कि बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए क्या कदम उठाया जाए ।"

43. हमारी राय में, अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा उपरोक्त विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे। हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं।

44. तथापि, हम इस न्यायालय के उन दोनों विनिश्चयों को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चयों पर विचार किया गया है।

45. श्रीमती भूरी और अन्य बनाम श्रीमती शोभा रानी और अन्य वाले मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :—

"5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यथानिर्दिष्ट उपरोक्त निर्णयज विधि से यह स्पष्ट होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि

٠

¹ 2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद).

बीमाकर्ता को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के अधीन पालिसी के अन्तर्गत दावाकर्ताओं को प्रतिकर के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है फिर भी इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा विकसित विधि के अधीन संदाय करने का दायित्व बीमा-कंपनी को ठहराया गया है । इसके साथ-साथ बीमा-कंपनी को भी मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंधों के भीतर बीमाकृत व्यक्ति से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए और इस प्रयोजन के लिए कोई वाद फाइल करने का भार डाले बिना स्वतंत्रता दी गई है । आरंभतः विधि का यह सिद्धांत बलजीत कौर वाले मामले में घोषित किया गया था और इसका संबंधित पक्षकारों द्वारा ऊपर निर्दिष्ट मामले में अनुसरण किया गया है । किन्तु पश्चातुवर्ती मामलों में विशेषतया नन्जप्पन (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि बीमाकृत/यान का स्वामी न्यायालय के समक्ष जमा धनराशि को निर्मुक्त करने से पहले एक सूचना जारी करेगा और उससे उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभृति देने की अपेक्षा की जाएगी जो बीमा कंपनी दावाकर्ताओं को संदाय करेगी । नोटिस के पश्चात न्यायालय प्रतिभूति के भाग के रूप में दुर्घटना करने वाले यान की कुर्की करने का निदेश कर सकता है और विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित कर सकता है । चूक होने की दशा में न्यायालय के लिए यह विकल्प होगा कि वह प्रतिभूति के निपटान द्वारा बीमाकृत/स्वामी से या यान के स्वामी की किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से धनराशि को सीधे वसुल करने का निदेश कर सकेगा । तथापि, ये सभी तरीके उच्चतम न्यायालय द्वारा बीमाकर्ता द्वारा बीमाकृत से वसूली के लिए उपबंधित किए गए हैं । तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए इन सभी निदेशों से तात्पर्य यह है कि न्यायालय उन दावाकर्ताओं के हित को कम नहीं मानेगा जिनके कल्याण के लिए उच्चतम न्यायालय ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के साथ बीमाकर्ता के दायित्व के अन्यथा निर्वचन द्वारा इन सभी मामलों के माध्यम से इस विधि का विकास किया है । इस प्रकार, वर्तमान मामले में निष्कर्ष यह है कि पुनरीक्षणकर्ता-दावेदार को तब भी नुकसान न हो जब बीमाकृत/यान का स्वामी प्रतिभूति नहीं देता है या वह न्यायालय के समक्ष उसको जारी किए नोटिस के अनुसरण में हाजिर नहीं होता है । अधिनियम के उपबंधों के भीतर धनराशि वसूल करने का भार उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय में स्वयं बीमाकर्ता पर डाला गया है । दावाकर्ताओं

को जिन्होंने अपने पक्ष में अधिनिर्णय प्राप्त किया है, इन मामलों में उच्चतम न्यायालय ने अपने संप्रेक्षण के माध्यम से हानि नहीं होने दी है । इस प्रकार, मामले को उपरोक्त दृष्टि से देखते हुए मेरा यह मत है कि यदि निचला न्यायालय प्रथमतः बीमाकृत/यान के स्वामी को नोटिस जारी करने का निदेश देता है और यदि उसके पश्चात् न्यायालय के समक्ष जमा राशि दावाकर्ताओं के पक्ष में निर्मुक्त की जाती है तो यह न्यायोचित और ठीक होगा।"

46. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य¹ वाले मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस प्रकार अधिकथित किया है :—

"4. विद्वान् काउंसेल ने यह सिद्ध करने के लिए नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम श्रीमती छल्ला भरथम्मा और अन्य (2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लेख किया है कि बीमा कंपनी के दावे को स्वामी द्वारा प्रत्याभृत किया जाना चाहिए । हमारे समक्ष इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है । हम यह कहना चाहते हैं कि जब तक वसूली के प्रयोजन के लिए बीमा कंपनी द्वारा उसी कार्यवाही में कोई समुचित आवेदन नहीं दिया जाता है तब तक स्वामी द्वारा प्रतिभूति प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । ऐसी प्रास्थिति अब परिपक्व हो चुकी है । इस प्रक्रम पर हम केवल दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर का संदाय करने से संबंधित मुद्दे पर विचार कर रहे हैं जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता है और जिसका स्वामी तथा बीमा कंपनी के बीच दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है । पीड़ित एक पर-व्यक्ति है । इसके अलावा, ऐसे निर्णय में, उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अधिनियम के फायदाग्रही उद्देश्य पर विचार करते हुए स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है, 'बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा, कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई दायित्व न हो' प्रभावतः यह अधिनिर्णय के समाधान के लिए एक कामचलाऊ (अन्तःकालीन) प्रबंध है जैसे ही इसे पारित किया जाता है । नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य {[2004] 3 उम.

_

¹ 2009(1) ए. डब्ल्यू. सी. 355.

नि. प. 24 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321} वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अपने निर्णय के पैरा 110 में इस प्रकार मत व्यक्त किया कि अधिकरण यह निदेश कर सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर और अन्य धनराशियों के लिए बीमाकृत को प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी है जिसके द्वारा उसे अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है । अतः विधानमंडल का आशय और उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए निर्वचन के आधार पर यह बात सुस्थापित है कि दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर के संदाय से किसी भी परिस्थिति में इनकार नहीं किया जाएगा । हम दोहराते हुए यह भी कह सकते हैं कि इसका स्वामी या बीमाकर्ता के दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है जिस पर उसी मामले में पृथक् आवेदन में या बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत निष्पादन आवेदन में विचार किया जा सकता है।"

- 47. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है।
- 48. मामले को निपटाने से पूर्व, अपीलार्थी-बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल, श्री एस. सी. श्रीवास्तव द्वारा दी गई कतिपय अन्य दलालों पर विचार किया जा सकता है।
- 49. अपीलार्थी-बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल, श्री एस. सी. श्रीवास्तव ने यह दलील दी है कि प्रश्नगत यान के बीमे के लिए किस्त का संदाय करने के लिए प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा जारी किए गए चैक के अनादरण और प्रश्नगत दुर्घटना की तारीख अर्थात् तारीख 25 मई, 1993 से पूर्व, अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा प्रश्नगत यान के संबंध में बीमा कवर नोट को ध्यान में रखते हुए, प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से विधिवत् बीमाकृत समझा जा सकता है और अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रश्नगत दुर्घटना के संबंध में प्रतिकर का संदाय करने लिए दायी थी । श्री श्रीवास्तव ने उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के संबंध में श्रीमती स्नेहा

दत्ता और अन्य बनाम एच. आर. टी. सी. और अन्य¹ वाले मामले का अवलंब लिया है ।

50. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एस. सी. श्रीवास्तव द्वारा दी गई दलील पर विचार करते हुए, हम इसे स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

51. वर्तमान मामले में, प्रश्नगत यान के संबंध में बीमा कवर नोट अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा तारीख 11 मई, 1993 से तारीख 10 मई, 1994 की अविध के लिए जारी किया गया था । किस्त के संदाय के लिए प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा जारी किया गया चैक सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया द्वारा तारीख 18 मई, 1993 को अनादिरत कर दिया गया । उक्त चैक का अनादरण होने के पश्चात्, अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने तारीख 19 मई, 1993 को प्रश्नगत यान के संबंध में जारी किया गया बीमा कवर नोट रद्द कर दिया । प्रश्नगत दुर्घटना तारीख 25 मई, 1993 को हुई थी ।

52. अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया है कि चैक अनादर करने के संबंध में जानकारी प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) को भेजी गई थी किन्तु यह साबित नहीं हुआ है कि चैक के अनादर संबंधी कोई जानकारी क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी को भेजी गई थी । श्री एस. सी. श्रीवास्तव ने अधिकरण द्वारा अभिलिखित उक्त निष्कर्ष में कोई अवैधता या दोष नहीं दर्शाया है।

53. अधिकरण द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय में नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम जितेन्द्र कुमार और अन्य² वाले मामले का अवलंब लिया है । इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 146, 147, 149 के उपबंधों और बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64-नख तथा उच्चतम न्यायालय के विभिन्न न्यायाधीशों का भी हवाला दिया है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है:—

"10. अधिनियम के विभिन्न उपबंधों का सुस्पष्ट पठन करने से हमें यह प्रतीत होता है कि सार्वजनिक स्थानों पर चलाने के लिए यान का बीमा आवश्यक है । इसलिए, यह विवक्षित है कि बीमा कंपनी स्वामी/बीमाकृत के लिए बीमा कवरेज के रद्द करने की सूचना ट्रैफिक

¹ 2000 (1) टी. ए. सी. 1 (एस. सी.).

² 2009 (2) टी. ए. सी. 407 (इला.).

के साथ निपटान करने वाले क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकारी और समुचित पुलिस प्राधिकारी सहित सभी संबंध रखने वालों को सूचना देगी । बीमा एक आश्वासन है । अधिनियम की स्कीम के अनुसार ऐसा आश्वासन न केवल बीमाकृत को बल्कि पर-व्यक्तियों को जिन्हें सड़क दुर्घटना के कारण क्षति पहुंची है या शिकार हुए हैं और उनके विधिक प्रतिनिधियों को भी देनी होती है । वे बीमाकर्ता और बीमाकृत के बीच की संविदा की अवधि और विस्तार के आशय के बारे में नहीं जानते हैं । वे चुक के बारे में भी नहीं जानते हैं । वे यह मान लेते हैं कि जब कोई सार्वजनिक स्थान पर चलता है तो उसके पास चलने के लिए सभी विधिमान्य दस्तावेज हैं । ऐसे विधिमान्य दस्तावेजों में से एक बीमाकर्ता और पर-व्यक्ति जोखिम को कवर करने के लिए बीमाकृत के बीच बीमा की संविदा होती है । उस रीति में क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकारी के लिए बीमा कंपनी द्वारा विधिमान्य बीमा कवरेज की जानकारी या सूचना होना और यातायात से संबंधित समृचित पुलिस प्राधिकारी को जानकारी होना आज्ञापक प्रकृति की हैं। बीमाकर्ता को प्रायिक वाणिज्यिक इंटरप्राइजेस के समान प्रतीक्षा दुर्घटना के बाद बीमा कवरेज न होने संबंधी प्रतिरक्षा लेना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता जब दावा होगा । जैसे ही कोई बीमाकर्ता अधिनियम के अधीन बीमाकृत संविदा के अन्दर प्रवेश करता है, उसका पर-व्यक्ति के लिए कानुनी तौर से दायित्व बन जाता है । इसके प्रतिकृल अधिनियम पर-व्यक्तियों के लिए विधान का एक लाभप्रद भाग है । इसलिए, जब कभी हम इस अधिकार क्षेत्र पर विचार करते हैं, हमें इस अधिनियम के महत्व को नहीं भूलना चाहिए । प्रभावित व्यक्तियों के हितों पर सबसे पहले विचार करना चाहिए । साम्या के सिद्धांत को लागू करते हुए विधि का अनुसरण करती है किन्त् कभी-कभी विधि लेक्स एलीकान्डो सीक्वीटर ईक्य्टेटेम के सिद्धांत द्वारा साम्या का अनुसरण करती है विशेषतया जब साम्या प्रयोजन के लिए सुसंगत विधि से उत्पन्न होती है । इसलिए, इसको अधिकरण के समक्ष प्रतिरक्षा के लिए बीमाकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह न केवल बीमा कवरेज को ही रद्द करे बल्कि बीमाकृत को सूचित भी करे किन्तु साथ-साथ सड़क पर यान को चलाने से रोकने के लिए सभी संबंध रखने वालों को भी सुचित करे अन्यथा वह अस्थायी व्यवस्था के रूप में और विशेषतः स्वामी अर्थात बीमाकृत से वसूली के रूप में तृतीय पक्षकार को प्रतिकर का

संदाय करने के दायित्व से नहीं बच सकती है । जब अधिनियम के अधीन बीमा कवरेज अनिवार्य है, उसके दो प्रकार के कर्तव्य हैं अर्थात निवारण और प्रतिकर । जब वे समुचित प्राधिकारियों के नोटिस द्वारा कवरेज के अभाव में निवारण के अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं तो उनका दायित्व समाप्त हो सकता है और प्राधिकारी बीमा कवरेज न होने के कारण सार्वजनिक स्थान से ऐसे यान का अभिग्रहण स्निश्चित करने के लिए पूर्ण रूप से दायी होगा । उन्हें नोटिस देने का अर्थ है, जनता को नोटिस देना । इसके अभाव में कोई बीमा कंपनी अस्थायी व्यवस्था के रूप में भी तृतीय पक्षकार के लिए प्रतिकर का संदाय करने के लिए अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकती है । कानुन के अधीन सुविधाएं अपेक्षित चैक के अनादरित होने के लिए बीमा संविदा के रद्दकरण के बारे में बीमाकर्ता द्वारा केवल बीमाकत के लिए सचना देकर व्यर्थ नहीं हो सकती हैं । यह विधि अधीन बीमाकर्ता का 'कठोर दायित्व' है । कोई बीमा कंपनी अपनी स्वयं की पालिसी के अनुसार जोखिम के बारे में व्यवसाय करती है। इसलिए, यदि बीमा कंपनी को जोखिम से बचने की अनुमति दी जाती है तो उसे कारबार की अपनी स्वयं की पालिसी के विरुद्ध जाना होगा विशेषतया जब वे भूमि राजस्व के रूप में अपने धन को वापस पाने की हकदार है जहां संविदा किसी भी कारण से विद्यमान होना प्रतीत नहीं होती है । सामान्यतः उपहत व्यक्ति का यह कर्तव्य नहीं है कि वह यह प्रत्याशा करे कि कोई दूसरा उपेक्षा करेगा और पूर्व प्रत्याशा के आधार पर लापरवाही के प्रभावों से बचेगा । किसी उपहत व्यक्ति की स्थिति और किसी बीमाकर्ता की स्थिति समान नहीं हो सकती है ।

(रेखाकंन बल देने के लिए किया गया है)

54.हमने यह पाया है कि इस मामले में दो पहलू हैं.....। पहला यह है कि बीमा कंपनी ने सभी संबंध रखने वालों को सूचित किया था या नहीं और दूसरे क्या तृतीय पक्षकार के लिए प्रतिकर का संदाय संपूर्ण है या वसूली के अधिकार के साथ अस्थायी व्यवस्था की प्रकृति का है। जहां सभी संबंध रखने वालों को सूचित कर दिया है तब बीमा कंपनी अधिनियम के अधीन और संविदा के अधीन अर्थात् दोनों के अधीन की अस्थायी व्यवस्था के रूप में भी तृतीय पक्षकारों को प्रतिकर से इनकार करने के बारे प्रतिरक्षा कर सकती है, जिससे विफल

रहने पर बीमा कंपनी की ओर से कानूनी व्यतिक्रम समझा जाएगा । इस प्रकार बीमा कंपनी ऐसी परिस्थितियों में अपने दायित्व से नहीं बच सकती है । दूसरे, अस्थायी व्यवस्था को एक दायित्व होना नहीं समझा जा सकता है । यह विधायिका के आशय को पूरा करने के लिए आहत को सुविधा पहुंचाने के लिए कानूनी अनुपालन कराने के लिए न्यायालय की एक प्रक्रिया है ।

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

55. इस प्रकार, यह विनिश्चय यह अधिकथित करता है कि यदि बीमा कंपनी ने यान के संबंध में बीमा कवरेज को रद्द कर दिया है तो उसे यातायात से संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकारी और यान के स्वामी/बीमाकृत को बीमा कवरेज के रद्दकरण की जानकारी के साथ समुचित पुलिस प्राधिकारी को सूचित करना अनिवार्य है । यदि बीमा कंपनी ने बीमा कवरेज के रद्दकरण के संबंध में केवल यान के स्वामी को ही सूचित किया है, और ऐसे रद्दकरण के संबंध में क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकारी और समुचित पुलिस प्राधिकारी को सूचित नहीं किया है, तब बीमा कंपनी विशेष रूप से अस्थायी व्यवस्था के रूप में पर-व्यक्ति और स्वामी अर्थात् बीमाकृत से वसूली के लिए प्रतिकर का संदाय करने के दायित्व से नहीं बच सकती ।

56. वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया है, अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी के कार्यालय को प्रश्नगत यान के संबंध में तारीख 19 मई, 1993 के बीमा कवर नोट के रद्दकरण से संबंधित कोई भी जानकारी नहीं दी थी । इसलिए, इस न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी-बीमा कंपनी पर-व्यक्ति अर्थात् हमारे समक्ष के दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी थी । तथापि, जैसाकि अधिकरण द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि उक्त चैक के अनादरण को ध्यान में रखते हुए जो प्रश्नगत यान के बीमे की किस्त का संदाय करने के लिए प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) ने जारी किया था, और इसे दृष्टिगत करते हुए कि किस्त के संबंध में प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा किए गए किसी पश्चातवर्ती संदाय का कोई साक्ष्य नहीं है, प्रश्नगत यान का स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) अपनी ओर से संविदा के अधीन अपने दायित्व को पुरा करने में विफल रहा है और इसलिए यह उचित था कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रश्नगत दुर्घटना के संबंध में अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा संदत्त प्रतिकर की धनराशि प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से वसूल करने का अधिकार दिया जाए । हमारे मतानुसार, अधिकरण द्वारा दिए गए उक्त

निदेश इस न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चय के अनुसरण में हैं।

57. जहां तक श्री एस. सी. श्रीवास्तव द्वारा उच्चतम न्यायालय द्वारा श्रीमती रनेहा दत्ता (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेने का संबंध है, उक्त विनिश्चय में उक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रतिकर की प्रश्नगत मात्रा के संबंध में विचार किया गया था । उक्त मामले में श्री एस. सी. श्रीवास्तव द्वारा बीमा कंपनी के उत्तरदायित्व के संबंध में उठाए गए प्रश्न पर विचार नहीं किया गया था ।

58. इसके पश्चात् श्री श्रीवास्तव ने यह दलील दी है कि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पर्वथनेनी और अन्य¹ वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के दो माननीय न्यायाधीशों की मिलकर बनी खंडपीठ ने एक मामले को जिसमें बीमा पालिसी के नवीकरण के लिए किस्त का एक चैक अनादिरत हो गया था, वृहत्तर खंडपीठ द्वारा विनिश्चय करने के लिए कितिपय प्रश्न निर्दिष्ट किए थे । उक्त मामले में पारित आदेश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:—

"विशेष इजाजत याचिका फाइल करने में 65 दिनों के विलंब को माफ किया जाता है।

- 2. नोटिस जारी किया जाए ।
- 3. अगले आदेशों तक आक्षेपित आदेश के प्रवर्तन पर रोक रहेगी ।
- 4. इस मामले में, याची बीमा कंपनी का अभिकथन यह है कि दुर्घटना की तारीख अर्थात् तारीख 30 नवम्बर, 2003 को कोई विधिमान्य बीमा कवरेज नहीं था । चैक पालिसी के नवीकरण के लिए किस्त हेतु तारीख 29 नवम्बर, 2003 को जारी किया गया था किन्तु वह अनादिरत हो गया था । अतः बीमा कंपनी ने यह दलील दी है कि उसका दावेदार को प्रतिकर की धनराशि का संदाय करने का कोई उत्तरदायित्व नहीं है क्योंकि दुर्घटना की तारीख को कोई बीमा कवरेज नहीं था ।
- 5. इसके अतिरक्त, उच्च न्यायालय ने यान के स्वामी से वसूल करने लिए बीमा कंपनी को स्वतंत्रता देने के साथ बीमा कंपनी का दावेदारों का प्रतिकर धनराशि का संदाय करने का निदेश दिया है।

¹ 2009 (4) टी. ए. सी. 382 (एस. सी.).

- 6. प्रथमदृष्ट्या हमारा मत यह है यदि बीमा कंपनी यह साबित करती है कि उसका दावेदारों को प्रतिकर का संदाय करने का कोई दायित्व नहीं है, तो बीमा कंपनी को संदाय करने के लिए और यान के स्वामी से उसकी वसूली करने के लिए मजबूर नहीं किया सकता है।
- 7. इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे कुछ विनिश्चय हैं जिनमें यह मत व्यक्त किया गया है कि भले ही बीमा कंपनी का कोई दायित्व न हो, तब भी उसे संदाय करना चाहिए और बाद में यान के स्वामी से उसकी वसूली करनी चाहिए [उदाहरण के लिए नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम येल्लम्मा और अन्य (2008) 2 एस. सी. सी. 562, समुन्दरा देवी बनाम नरेन्द्र कौर (2008) 9 एस. सी. सी. 100 = 2008 (4) टी. ए. सी. 746, ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी बनाम ब्रिज मोहन (2007) 7 एस. सी. सी. 56 = 2007 (3) टी. ए. सी. 20, न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी बनाम दर्शन देवी (2008) एस. सी. सी. 4162 वाले मामले देखिए] ।
- 8. हमें इस न्यायालय के पूर्वोक्त विनिश्चयों की विधिमान्यता के बारे में कुछ संदेह है । यदि बीमा कंपनी का किसी भी प्रकार का संदाय कर का कोई दायित्व नहीं हो तो हमारे मतानुसार उसे प्रतिकर की भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करके न्यायालय के आदेश द्वारा धनराशि का संदाय करने के लिए और बाद में यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए आबद्ध नहीं किया जा सकता । हमारे विचार से, भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अन्तर्गत इस प्रकार के मामले नहीं आते हैं । जब किसी व्यक्ति का किसी भी प्रकार से कोई दायित्व नहीं है तो उसे संदाय करने के लिए कैसे बाध्य किया जा सकता है ? बीमा कंपनी को यान के स्वामी से धनराशि वसूल करने के लिए अनेक वर्ष लग सकते हैं और यह भी संभव है कि किसी कारण से वसूली संभव ही न हो ।
- 9. इसलिए, हम निदेश देते हैं कि इस मामले के दस्तावेजों को निम्नलिखित प्रश्नों का विनिश्चय करने के लिए एक बृहत्तर खंड न्यायपीठ का गठन करने के लिए माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा जाए —

- '(1) यदि कोई बीमा कंपनी यह साबित कर सकती है कि उसका विशेषतः मोटर यान अधिनियम या किसी अन्य अधिनियमिति के अधीन दावेदारों को किसी भी धनराशि का संदाय करने के लिए कोई दायित्व नहीं बनता है तो क्या न्यायालय तब भी उसे प्रश्नगत धनराशि का संदाय करने और बाद में उसे यान के स्वामी से वसूल करने की स्वतंत्रता देते हुए बाध्य कर सकता है।
- (2) क्या ऐसा कोई निदेश संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन दिया जा सकता है और अनुच्छेद 142 की व्याप्ति क्या है ? क्या अनुच्छेद 142 न्यायालय को ऐसा दायित्व सृजित करने की अनुज्ञा देता है जो कि नहीं है ?""
- 59. हमारी जानकारी में यह नहीं लाया गया है कि उक्त प्रश्न का उत्तर उच्चतम न्यायालय की बृहत्तर खंड न्यायपीठ द्वारा दिया गया था । इन परिस्थितियों में, हमने विधिक स्थिति के आधार पर संदाय और वसूली के सिद्धांत को लागू करते हुए प्रतिकर का संदाय करने के संबंध में अपीलार्थी-बीमा कंपनी के दायित्व के प्रश्न का विनिश्चय किया है क्योंकि यह उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों को दृष्टिगत करते हुए अब तक विद्यमान है, जो इस न्यायालय पर आबद्धकर है ।
- 60. इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा **हरभजन सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**¹ वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का निर्देश किया जा सकता है।
- 61. उपर्युक्त विनिश्चय में, उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अपना मत व्यक्त किया है :--
 - "12. मोहम्मद शफी (2007) 14 एस. सी. सी 544 वाले मामले में एक साक्षी द्वारा संहिता की धारा 319 के अधीन एक आवेदन किया गया था। वह परिवादी नहीं था। उसे आवेदन फाइल करने का अधिकार नहीं था। उस मामले में, विचारण न्यायालय ने संहिता की धारा 319 के अधीन परिवादी द्वारा फाइल किए गए आवेदन पर कोई आदेश पारित करने से यह कहते हुए इनकार कर दिया कि मामले पर साक्षी की प्रतिपरीक्षा खत्म के पश्चात ही विचार

^{1 (2009) 13} एस. सी. सी 608.

किया जाएगा । राज्य उस आदेश द्वारा व्यथित नहीं हुआ और उस स्थिति में इस न्यायालय ने इस निष्कर्ष के साथ हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया कि उस प्रक्रम पर उच्च न्यायालय ने ऐसे किसी आदेश को सही नहीं ठहराया ।

13. तथापि, हमारा ध्यान हरदीप सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (2009) 16 एस. सी. सी. 785 = जे. टी. 2008 (12) एस. सी. 7 वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की ओर आकर्षित किया गया है जिसमें निम्नलिखित प्रश्नों को तारीख 7 नवम्बर, 2008 के एक आदेश द्वारा वृहत्तर खंड न्यायपीठ को विचार करने के लिए निर्दिष्ट किया गया है —

'79. इसलिए हम तीन माननीय न्यायाधीशों की खंड न्यायपीठ को विचार करने के लिए निम्नलिखित दो प्रश्नों को निर्दिष्ट करते हैं –

- (1) किसी न्यायालय द्वारा किसी अभियुक्त को जोड़ने के लिए संहिता की धारा 319 की उपधारा (1) के अधीन शक्ति का कब प्रयोग किया जा सकता है ? क्या धारा 319 के अधीन आवेदन तब तक नहीं है जब तक कि साक्षी की प्रतिपरीक्षा पूरी न हो जाए ?
- (2) इस बारे में परीक्षा क्या है और संहिता की धारा 319 की उपधारा (1) के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए मार्गदर्शन क्या हैं ? क्या ऐसी शक्ति का केवल तभी प्रयोग किया जा सकता है जब न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि समन किए गए अभियुक्त को सभी संभावनाओं के भीतर दोषी ठहराया जा सकता है ?'

हम यह उपधारित करते हैं कि सभी मामलों में न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए प्रतिपरीक्षा तक इंतजार नहीं कर सकता है।

14. विद्वान् न्यायाधीशों ने **हरदीप सिंह** वाले मामले उपर्युक्त विनिश्चय में इस न्यायालय द्वारा राकेश **बनाम** हरियाणा राज्य (2001) 6 एस. सी. सी. 248 = (2001) एस. सी. सी. (क्रि.) 1090 वाले मामले में दिए गए निर्णय का निर्देश किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रथमदृष्ट्या सामग्री के आधार पर प्रतिपरीक्षा के बिना भी सेशन न्यायालय को यह विनिश्चय करने के लिए समर्थ बनाएगा कि क्या संहिता की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग यह कथन करते हुए किया जाना चाहिए या नहीं कि उस प्रक्रम पर संहिता की धारा 319 में यथाप्रयुक्त साक्ष्य उस साक्ष्य के लिए अभिप्रेत नहीं होगी जिसकी प्रतिपरीक्षा द्वारा जांच की गई है।

15. भले ही विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील सही हो, हमें इस प्रक्रम पर उक्त प्रश्न पर विचार नहीं करना है; हमें साक्षियों की प्रतिपरीक्षा पर विचार करना है । न्यायालय ने किसी समाधान पर पहुंचने के प्रयोजन के लिए अपने समक्ष उपलब्ध इस सामग्री पर विचार किया था कि क्या संहिता की धारा 319 के अधीन अधिकारिता प्रयोग के लिए मामला बनता था । केवल इस कारण कि मोहम्मद शफ़ी (उपर्युक्त) वाले मामले के निर्णय के एक भाग पर दूसरी खण्ड न्यायपीठ द्वारा संदेह किया गया है, इसका यह अर्थ नहीं होगा कि हमें वृहत्तर खण्ड न्यायपीठ के विनिश्चय का इंतजार करना चाहिए, खास तौर से जब अपीलार्थी सहायता करने के बजाय उनकी दलीलों का विरोध कर रहे हैं।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

- 62. इस प्रकार यह विनिश्चय यह अधिकथित करता है कि केवल इस कारण कि किसी निर्णय की विधिमान्यता पर दूसरी खंड न्यायपीठ द्वारा संदेह किया गया है और मामला वृहत्तर खंड न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया है, यह अर्थ नहीं होगा कि वर्तमान खंड न्यायपीठ को वृहत्तर खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का इंतजार करना चाहिए।
- 63. इस प्रकार यह विनिश्चय इस निष्कर्ष का समर्थन करता है कि यद्यपि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम परवथनेनी और अन्य, 2009 (4) टी. ए. सी. 382 वाले मामले में पारित आदेश द्वारा कतिपय प्रश्न उच्चतम न्यायालय की वृहत्तर खण्ड न्यायपीठ को निर्दिष्ट किए गए हैं, इस न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए अब तक विद्यमान विधिक स्थिति के आधार पर संविवाद का विनिश्चय करे।
- 64. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने

और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है।

- 65. आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने के लिए समुचित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करे।
- 66. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे।
- 67. अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटायी जाएगी।
- 68. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अध्यधीन खारिज किए जाने योग्य है।
- 69. तद्नुसार, बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अध्यधीन खारिज की जाती है।
- 70. तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चों के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

प्रीतम सिंह बिश्नोई

बनाम

विमल कुमार महर्षि और अन्य

तारीख 18 मार्च, 2011 न्यायमूर्ति राकेश तिवारी

उत्तर प्रदेश शहरी भवन किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन अधिनियम, 1972 – धारा 21(1)(क) – किराएदार – किराए पर दी गई संपत्ति अन्य व्यक्ति द्वारा क्रय की जानी – नए मकान-मालिक द्वारा किराएदार को सूचना – वास्तविक आवश्यकता के आधार पर निर्मुक्ति के लिए आवेदन – किराएदार द्वारा दलीलों के अंतिम प्रक्रम पर सूचना की अभिरवीकृति पर अपने हस्ताक्षर से इनकार करते हुए हस्तलेख विशेषज्ञ से परीक्षा कराने का अनुरोध – जहां यह साबित हो जाता है कि किराएदार को सूचना की पूर्व प्रक्रम पर जानकारी थी वहां उसे विलंबित प्रक्रम पर ऐसा विवाद्यक उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता – चूंकि मकान-मालिक की वास्तविक आवश्यकता किराएदार से अधिक तीव्र है अतः बेदखली का आदेश न्यायोचित है।

यह रिट याचिका 2006 के पी. ए. मामला संख्या 4 में विहित प्राधिकारी, बिजनौर द्वारा तारीख 16 जनवरी, 2010 को पारित निर्णय और आदेश और 2010 की किराया नियंत्रण अपील संख्या 3 में अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, बिजनौर द्वारा तारीख 22 जनवरी, 2011 को पारित आदेश और जिसके द्वारा विहित प्राधिकारी ने 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 2(1)(क) के अधीन प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए निर्मुक्ति आवेदन को मंजूर किया है और याची द्वारा फाइल की गई उक्त अपील को खारिज किया है, के विरुद्ध फाइल की गई है। रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित — पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि स्वीकृततः याची ने सुसंगत समय पर सूचना से संबंधित रसीदों और अभिस्वीकृति पर अपने हस्ताक्षरों से संबंधित विवाद्यक को अर्थात् सूचना की तामील से संबंधित विवाद्यक को नहीं उठाया था । वस्तुतः उसने उस समय सूचना पर अपने

हस्ताक्षर होने से इनकार नहीं किया जब उसने लिखित कथन फाइल किया था या विहित अधिकारी के समक्ष इस संबंध में आवेदन फाइल किया था और यहां तक कि साक्ष्य के बंद किए जाने तक भी उसने यह विवाद्यक नहीं उठाया । याची ने यह विवाद्यक अंतिम सुनवाई के समय उठाया जब निरीक्षण करने के पश्चात् उसका दावा प्रभावित हुआ । साधारणतया सबूत का भार ऐसे व्यक्ति पर होता है जिसने विवाद्यक उठाया हो या जिस पर कोई मुद्दा उठाया हो या उसने वह विवाद्यक पहले न उठाया हो । अपील न्यायालय याची के आवेदन को खारिज करने में सही था क्योंकि याची के लिए ऐसा कोई अवसर नहीं था कि वह उस मुद्दे को उस समय उठाए जब दुसरे पक्षकार द्वारा पहले ही अपनी दलीलें पुरी कर ली गई हों । यदि ऐसी कोई अनुज्ञा दी जाती है तब हस्ताक्षरों को साबित करने के लिए नए सिरे से साक्ष्य का अवसर देना आवश्यक होगा और तत्पश्चात् मामला पुनः साक्षियों की परीक्षा के प्रक्रम पर चला जाएगा । याची द्वारा फाइल किए गए आवेदन (कागज संख्या 105-ग) से यह स्पष्ट होता है कि उसे सूचना की तामील से संबंधित तथ्य के बारे में जानकारी थी तथापि, उसने वस्तृतः अपने लिखित कथन में यह अभिवाक नहीं किया । उसने यह अभिवाक दलीलों की तैयारी के दौरान किया । इसके पश्चात उसने आवेदन को फाइल करने के लिए अपने काउंसेल को बदला । उसने आवेदन केवल इस आधार पर फाइल किया कि उसे यह पता चला है कि उसके काउंसेल द्वारा यह अभिवाक नहीं किया गया है । मामले को पीछे ले जाने के लिए यह एक विधिक आधार नहीं है जो कि कई वर्षों के पश्चात सुनवाई में आया था और जिसमें पक्षकारों द्वारा साक्ष्य इत्यादि पूरा कर लिया गया था । जहां तक भाई से भवन के हिस्से का प्रश्न है, किसी किराएदार को निर्मुक्ति की कार्यवाहियों को आक्षेपित करने का अधिकार नहीं है क्योंकि सह-स्वामियों द्वारा दी गई सूचना तब तक पर्याप्त सूचना होगी जब तक इसके प्रतिकूल साबित न किया जाए कि निर्मुक्ति आवेदन फाइल करने के लिए सह-स्वामी से सहमित नहीं ली गई थी । इस मामले में किराएदारी के समर्पण का प्रश्न किसी भी प्रकार से अन्तर्वलित नहीं है । याची के विद्वान काउंसेल की यह दलील कि किराएदार भवन के एक भाग का जिसमें वह किराएदार था, पहले अपनी किराएदारी का समर्पण करे, उचित प्रतीत नहीं होती । चूंकि याची-किराएदार द्वारा इस संबंध में कोई पक्षकथन भी नहीं किया गया है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मकान-मालिक ने निर्मुक्ति आवेदन में उसकी किराएदारी को छुपाया है। यह उल्लेख किया जा सकता है कि निर्मक्ति आवेदन मकान-मालिक द्वारा फाइल किया गया है और चुंकि प्रत्यर्थी विमल कुमार महर्षि ने अपने भाई के साथ अपना स्वामित्व अधिकार अर्जित किया है इसलिए उसे निर्मुक्ति आवेदन फाइल करने का अधिकार है । निचले न्यायालय ने स्पष्ट रूप से वी. के. महर्षि, उसकी पत्नी, पुत्र और पुत्रियों के लिए भवन की वास्तविक आवश्यकता के संबंध में तथ्य का निष्कर्ष अभिलिखित किया है । विक्रय-विलेख अभिलेख पर है जो इस तथ्य को साबित करता है कि श्री वी. के. महर्षि मकान-मालिक था । अभिलेख से यह भी साबित होता है कि विभाजन हुआ था जिसमें श्री बिश्नोई किराएदार था । उपर्युक्त सूचना संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के अधीन नहीं है अपित यह सूचना 1972 के अधिनियम सं. 13 की धारा 21(1)(क) के अधीन सूचना है इसलिए यह याची के विद्वान काउंसेलों की दलीलों को कोई सहायता प्रदान नहीं करेगी । मकान-मालिक द्वारा भवन को क्रय किए जाने के संबंध में अधिनियम की धारा 21(ख) के अधीन यथा अपेक्षित सूचना द्वारा पर्याप्त सूचना दी गई है और सूचना तथा निर्मृक्ति आवेदन विधि के अनुसार फाइल किया गया है और इसलिए निचले न्यायालयों ने इसे ठीक ही मंजूर किया है जैसा कि याची द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन से स्पष्ट है कि उसने सुचना पर न तो अपने हस्ताक्षर को विवादित किया है और न ही उसने कार्यवाहियों में उपस्थित होकर इसकी (सूचना की) प्राप्ति से इनकार किया है और इसलिए इस मामले में विशेषतया इस विलंबित प्रक्रम पर हस्तलेख विशेषज्ञ द्वारा परीक्षा कराने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । उपर्युक्त अभिकथित कारणों से न्यायालय का यह स्विचारित मत है कि निचले न्यायालयों ने आक्षेपित आदेशों को पारित करने में अवैधता नहीं की है और वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित आदेशों को अभिखण्डित करने के लिए हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है । (पैरा 44, 45, 46, 47 और 48)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा
[2009] 2009 (1) ए. आर. सी. 767 :
 निर्भय कुमार बनाम माया देवी और अन्य; 12,17
[2008] 2008 (70) ए. एल. आर. 539 :
 सिद्धनाथ शुक्ला बनाम जे. एस. सी. सी.
 (विहित प्राधिकारी) लखनऊ और अन्य; 33
[2001] 2001 (2) ए. आर. सी. 554 (एस. सी.) :
 अनवर हसन खां बनाम मोहम्मद शफ़ी
 और अन्य; 12,16,17

[1998]	1998 (1) ए. आर. सी. 109 (एस. सी.) : मर्टिन एण्ड हैरिस लिमिटेड बनाम षष्टम अपर जिला न्यायाधीश और अन्य;	12,15
[1993]	1993 (2) ए. आर. सी. 63 : जगदीश प्रसाद बनाम अपर जिला न्यायाधीश, कानपुर और अन्य;	33
[1989]	1989 (1) ए. आर. सी. 277 : अब्दुल जब्बार बनाम षष्ठम अपर जिला न्यायाधीश, गोरखपुर और अन्य;	11,19,43
[1981]	1981 (1) ए. आर. सी. 530 (एस. सी.) : श्रीमती नाज़ुक जहां और अन्य बनाम अपर जिला न्यायाधीश और अन्य;	11,19,28
[1981]	1981 ए. आर. सी. 516 (एस. सी.) : नन्द बल्लभ गुरनानी बनाम श्रीमती मकबूल बेगम;	28
[1966]	ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 432 : बी. एन. सरीन बनाम अजीत कुमार पोपलई और एक अन्य ।	41

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट : 2011 की सिविल प्रकीर्ण रिट अधिकारिता याचिका सं. 12700.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री के. एम. गर्ग प्रत्यर्थी की ओर से श्री अनिल शर्मा

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी — पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

2. यह रिट याचिका 2006 के पी. ए. मामला संख्या 4 में विहित प्राधिकारी बिजनौर द्वारा तारीख 16 जनवरी, 2010 को पारित निर्णय और आदेश जो रिट याचिका के उपाबंध-10 के रूप में संलग्न है, और 2010 की किराया नियंत्रण अपील संख्या 3 में अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, बिजनौर द्वारा तारीख 22 जनवरी, 2011 को पारित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । जो रिट याचिका के उपाबंध-16 के रूप में संलग्न है और जिसके द्वारा विहित प्राधिकारी ने 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 21(1)(क) के अधीन प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए निर्मुक्ति आवेदन को मंजूर किया है और याची द्वारा फाइल की गई उक्त अपील को खारिज किया है ।

- 3. तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी मकान-मालिक (मकान-मालिकों) ने यह प्रकथन करते हुए विहित प्राधिकारी/सिविल न्यायाधीश के न्यायालय में उत्तर प्रदेश शहरी भवन किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन अधिनियम, 1972 (जिसे '1972 का अधिनियम संख्या 13' कहा गया है) की धारा 21(1)(क) के अधीन यह प्रकथन करते हुए आवेदन फाइल किया था कि प्रत्यर्थी जिला बिजनौर, मोहल्ला गंगा नगर सिविल लाइन्स स्थित परिसर का स्वामी है; उसने और उसके भाइयों ने उक्त मकान तथा उक्त मकान के दक्षिणी तरफ स्थित मकान तारीख 9 मई, 2003 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा आनन्द कुमार गुप्ता से क्रय किए थे; प्रत्यर्थी मकान-मालिक ने तारीख 30 अगस्त, 2005 को अपने काउंसेल द्वारा याची को जिसने विवादित मकान में किराएदार होने का दावा किया है, सूचना जारी की थी । यह सूचना इस आशय की थी कि प्रत्यर्थी और उसके भाइयों द्वारा क्रय किए गए विवादित मकान का उनके बीच विभाजन हो गया है जिसके द्वारा याची की किराएदारी के अधीन वाला प्रश्नगत भाग प्रत्यर्थी विमल कुमार महर्षि के हिस्से में आया है ।
- 4. याची ने लिखित कथन फाइल करके निर्मुक्ति आवेदन का विरोध किया और इसके सिवाय कि वह प्रश्नगत मकान का किराएदार था, उसमें किए गए अभिकथनों से इनकार किया । उसने इस आशय का भी आक्षेप किया था कि मकान-मालिक द्वारा फाइल किया गया निर्मुक्ति आवेदन भ्रमित करने वाला था और ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि वह तात्विक तथ्यों को छुपाते हुए फाइल किया गया था । प्रत्यर्थी-मकान-मालिक द्वारा लिखित कथन का विरोध करते हुए उत्तर फाइल किया गया था ।
- 5. मकान-मालिक ने निर्मुक्ति आवेदन में किए गए प्रकथनों को दोहराते हुए साक्ष्य में अपना एक शपथ-पत्र और अपने पक्षकथन के समर्थन में वचन सिंह और सुमित जैन के शपथ-पत्र फाइल किए । इसके प्रतिकूल याची किराएदार ने अपने पक्षकथन के समर्थन में चौधरी शूरवीर सिंह,

मुकेश और बृजबाला शरण के शपथ-पत्र फाइल किए ।

6. ऐसा प्रतीत होता है कि याची-किराएदार द्वारा इस आधार पर प्रत्यर्थी और उसके साथियों की प्रतिपरीक्षा हेत् अनुज्ञात करने के लिए तारीख 7 जुलाई, 2008 का एक आवेदन (कागज संख्या ग-75) फाइल किया गया था कि उनके द्वारा फाइल किए गए शपथ-पत्र गलत हैं । विहित प्राधिकारी ने तारीख 15 सितंबर, 2008 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए उक्त आवेदन खारिज कर दिया कि निर्मृक्ति आवेदन में की गई कार्यवाहियां सरसरी प्रकृति की हैं और साक्षियों की मौखिक परीक्षा और प्रतिपरीक्षा के लिए कोई उपबंध नहीं है और इसलिए निर्मुक्ति आवेदन का संबंधित पक्षकारों द्वारा फाइल किए गए शपथ-पत्रों के आधार पर विनिश्चय किया । इसके पश्चात याची ने एक संशोधन आवेदन फाइल किया जो खारिज कर दिया गया । इसके पश्चात उसने तारीख 22 मई, 2009 को एक आवेदन (कागज संख्या 105-ग) फाइल किया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया कि उस पर तारीख 30 अगस्त, 2005 की सूचना की कभी भी तामील नहीं हुई और याची पर सूचना की तामील फर्जी है और डाकिए से दुरभिसंधि करके दिखाई गई है और इसलिए सूचना पर उसके हस्ताक्षरों की हस्तलेख विशेषज्ञ से परीक्षा कराए जाने की आवश्यकता है । विहित प्राधिकारी ने उक्त आवेदन उसी दिन अर्थात तारीख 22 मई, 2009 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया । ऐसा प्रतीत होता है कि यह आवेदन (कागज संख्या 105-ग) तब फाइल किया गया जब मामला अंतिम सुनवाई के लिए नियत किया गया था।

7. तारीख 22 मई, 2009 का आवेदन (कागज संख्या 105-ग) इस प्रकार है :--

> "न्यायालय सिविल जज सी. डि. बिजनौर । पी. ए. वाद संख्या 4/2006 विमल महर्षि बनाम प्रीतम सिंह बिश्नोई श्रीमान जी,

निवेदन है कि उपरोक्त वाद में आज दिनांक - वास्ते बहस प्रतिवादी नियत है, वरवक्त तैयारी बहस इस बात का इल्म हुआ कि प्रतिवाद पर नोटिस की तामील गलत तौर से दर्शाया जाना प्रार्थी के प्रतिवादी पत्र में अभिकथित किया गया है, तामील के संबंध में एक्नोलेजमेन्ट कार्ड कागज संख्या ग-10 पर प्रार्थी प्रतिवादी द्वारा कोई हस्ताक्षर नहीं किए गए जो हस्ताक्षर प्रार्थी/प्रतिवादी के दर्शाए

गए हैं वह प्रार्थी के हरिगज नहीं है, उक्त हस्ताक्षर निश्चित रूप से वादी द्वारा वाहमसाजगी पोस्टमैन/सर्विस कुनिन्दा गलत तौर से फर्जी तरीके से कूटरचना करते हुए बनाए गए है, जिसके संबंध में एक्सपर्ट जांच की जानी आवश्यक है, लिहाजा न्यायहित में कागज सं. ग-10 पर बनाए गए फर्जी हस्ताक्षर प्रतिवादी के फोटो लिए जाकर एक्सपर्ट ओपिनियन प्राप्त करने हेतु आदेशित किया जाना आवश्यक है

अतः प्रार्थना है कि उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए न्यायहित में नोटिस को तामील एक्नोलेजमेन्ट कागज सं. ग-10 पर प्रतिवादी के हस्ताक्षर की जांच हेतु एक्सपर्ट से फोटो कराकर रिपोर्ट न्यायालय में मंगाए जाने हेतु तद्नुसार आदेशित करने की कृपा करें।

दिनांक 22.5.2009

प्रार्थी/प्रतिवादी

श्रीमान् जी घोर विरोध है कि वाद में साक्ष्य वादी का समय पूर्व समाप्त हो चुका है तथा वाद बहस वादी नियुक्त है वादी की बहस भी हो चुकी है । केवल टालने की नियत से प्रा. पत्र दिया जा रहा है । आदेश दिनांक 19.5.2009 के अनुपालन में निर्णय पारित किया जाना जरूरी है । ह. अस्पष्ट दिनांक 22.5.2009 ।"

- 8. न्यायालय ने उक्त आवेदन खारिज करते हुए अपने तारीख 22 मई, 2009 के आदेश में इस तथ्य का उल्लेख किया कि अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि सूचना की तामील के दावे के पश्चात् लंबी अवधि गुजर चुकी है और इसके पश्चात् पक्षकार न्यायालय में उपस्थित हुए हैं । याची-किराएदार ने अभिलेख पर अपना लिखित कथन और साक्ष्य प्रस्तुत किया है । न्यायालय ने प्रत्यर्थी-मकान-मालिक की ओर से फाइल आवेदन खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि इन परिस्थितियों में इस प्रक्रम पर हस्ताक्षरों की परीक्षा करने के लिए आवेदन न्यायोचित नहीं था । निचले न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि याची इस आवेदन पर कार्यवाहियों को विलंबित कराना चाहता है और यदि वह सूचना की तामील को आक्षेपित करना चाहता था जो उसे सुसंगत समय पर यह विवाद्यक उठाना चाहिए था न कि मकान-मालिक के काउंसेल द्वारा दलीलें समाप्त करने के पश्चात ।
 - 9. तारीख 22 मई, 2009 का आदेश इस प्रकार है :-

"पत्रावली पेश हुई । पुकार पर पक्षकारों के विद्वान् अधिवक्ता उपस्थित हुए । अधिवक्ता प्रतिवादी द्वारा प्रार्थना पत्र ग-105 इस आशय से प्रस्तुत किया गया है कि तैयारी के वक्त उन्हें इस बात की जानकारी हुई है कि प्रतिवादी पर नोटिस की तामीली गलत रूप से दर्शाई गई है इसके अतिरिक्त कागज सं. ग-10 पर प्रतिवादी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किये गये हैं । जो हस्ताक्षर प्रार्थी के दर्शाए गए हैं वह हरगिज प्रार्थी/प्रतिवादी के नहीं हैं । उसके हस्ताक्षर फर्जी तौर से कूटरचना कर बनाए गए हैं । प्रार्थी/प्रतिवादी द्वारा प्रार्थना की गई है कि इस संबंध में एक्सपर्ट से जांच कराई जानी आवश्यक है । अतः कागज सं. ग-10 पर प्रार्थी/प्रतिवादी के हस्ताक्षर हेतु एक्सपर्ट से जांच कराकर रिपोर्ट न्यायालय में मंगाए जाने की कृपा करें ।

अधिवक्ता वादी द्वारा प्रार्थना पत्र पर आपित ग-106 प्रस्तुत की गई है जिसमें यह कहा गया है कि कागज सं. ग-10 पर प्रतिवादी के हस्ताक्षर की जांच हेतु एक्सपर्ट से फोटो कराकर रिपोर्ट मंगाए जाने हेतु जो प्रार्थना पत्र प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किया गया है वह निराधार है । प्रतिवादी ने 12.3.2007 को अपना बयान तहरीरी दाखिल किया है । प्रतिवादी पत्र में उसने ग-10 पर अपने हस्ताक्षर होने से इनकार किया है । उसके द्वारा प्रस्तुत शपथ-पत्र ग-55 में भी हस्ताक्षर होने से इनकार नहीं किया गया है । सच तो यह है कि प्रतिवादी गलत तथ्यों के आधार पर वाद को तबालत में डालने के लिए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर रहा है जबकि दोनों पक्षकारों की साक्ष्य समाप्त होकर बहस सुनी जा चुकी है । अब प्रतिवादी पुनः वाद की कार्यवाही को विलम्बित करने के उद्देश्य से रिओपन कराना चाहता है । अतः उक्त प्रार्थना पत्र स्वीकार न किया जाए ।

उभय पक्षों को सुना तथा पत्रावली का परिशीलन किया ।

पत्रावली के परिशीलन से स्पष्ट है कि प्रतिवादी पर तामीली हुए एक लम्बा अर्सा गुजर चुका है । प्रतिवादी ने अपनी तामीली के उपरान्त न्यायालय में उपस्थित होकर अपना प्रतिवाद पत्र, शपथ-पत्र दोनों प्रस्तुत कर दिए हैं । पत्रावली इस समय बहस के प्रक्रम पर नियत है तथा वादी की बहस सुनी जा चुकी है । प्रतिवादी इस तरह के प्रार्थना पत्र पर बार-बार कर निर्णय की प्रक्रिया सम्पादित नहीं होने देना चाहता है । इसके अलावा प्रतिवादी द्वारा उक्त प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने का और कोई मकसद कथित नहीं होता है । यदि प्रतिवादी को तामीली के संबंध में निवेदन करना था तो समुचित प्रक्रम पर करना चाहिए था अब यह प्रक्रम प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने का नहीं है ।

तद्नुसार प्रार्थना पत्र ग-105 निरस्त किया जाता है । पत्रावली वास्ते बहस दिनांक 27.5.2009 को पेश हो ।

ह. अपठनीय

सिविल जज सी. डि."

- 10. इसके पश्चात् विहित प्राधिकारी ने तारीख 16 जनवरी, 2010 के आदेश द्वारा निर्मुक्ति आवेदन मंजूर कर लिया । याची ने उपर्युक्त तारीख 16 जनवरी, 2010 के आदेश से व्यथित होकर जिला न्यायाधीश, बिजनौर के न्यायालय में 2010 की किराया नियंत्रण अपील संख्या 3 फाइल की । उक्त अपील के लंबन के दौरान मकान-मालिक विमल कुमार महर्षि की मृत्यु हो गई और उसके विधिक वारिसों और प्रतिनिधियों को अपील में उसके स्थान पर अपील प्रक्रम पर प्रति-स्थापित किया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि याची ने आवास की उपलब्धता के संबंध में विवादित मकान के निरीक्षण के लिए अपील में आयुक्त की नियुक्ति के लिए एक आवेदन (कागज संख्या ग-26) फाइल किया जिसे अपर जिला न्यायाधीश ने अपने तारीख 13 अगस्त, 2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया । इसके पश्चात् अपर जिला न्यायाधीश न्यायालय संख्या 2, बिजनौर ने अपने तारीख 22 जनवरी, 2011 के निर्णय और आदेश द्वारा याची की अपील खारिज कर दी ।
- 11. याची ने आक्षेपित आदेशों को इन आधारों पर आक्षेपित किया है कि निचले न्यायालय का आदेश त्रुटिपूर्ण, मनमाना और अवैध है और इस कारण से अपास्त किए जाने योग्य है कि सूचना अधिनियम की धारा 21(1)(क) के प्रथम परंतुक के अधीन यथाअनुध्यात रूप में नहीं है । याची के विद्वान् काउंसेल ने इस दलील के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया है:—
 - (i) अब्दुल जब्बार बनाम षष्ठम अपर जिला न्यायाधीश, गोरखपुर और अन्य 1
 - (ii) श्रीमती नाजुक जहां और अन्य बनाम अपर जिला न्यायाधीश और अन्य²
 - 12. दूसरी दलील यह दी गई है कि भवन के क्रय करने की तारीख

¹ 1989 (1) ए. आर. सी. 277.

² 1981 (1) ए. आर. सी. 530 (एस. सी.)

से 3 वर्ष की अविध बीत जानी चाहिए और 6 मास की सूचना आज्ञापक है और उन्होंने अपनी इस दलील के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया है:—

- (i) मार्टिन एण्ड हैरिस लिमिटेड बनाम षष्टम अपर जिला न्यायाधीश और अन्य 1
 - (ii) अनवर हसन खां बनाम मोहम्मद शफ़ी और अन्य²
 - (iii) निर्भय कुमार बनाम माया देवी और अन्य³

13. याची के विद्वान् काउंसेल ने अगली दलील यह दी है कि प्रत्यर्थी मकान-मालिक के पक्षकथनानुसार मकान-मालिक ने यह दावा किया है कि बिजनौर के मोहल्ला गंगा नगर के सिविल लाइन्स स्थित संपत्ति आवेदक (श्री विमल कुमार महर्षि), कमल महर्षि और अचल महर्षि द्वारा तारीख 19 मई, 2003 के विक्रय-विलेख द्वारा क्रय की गई थी; इस संपत्ति में स्वर्गीय विमल कुमार महर्षि का अंश था; संपत्ति का विभाजन हुआ था और विवादित संपत्ति जिसमें याची किराएदार है, प्रत्यर्थी-मकान-मालिक के हिस्से में आई थी; तारीख 30 अगस्त, 2005 की सूचना द्वारा याची/किराएदार को यह सूचित किया गया था कि विवादित आवास का किराया और नगरपालिका कर याची द्वारा प्रत्यर्थी को संदत्त किए जाएं।

14. यह कहा गया है कि तारीख 30 अगस्त, 2005 की अभिकथित सूचना अस्पष्ट, भ्रमित करने वाली और त्रुटिपूर्ण है, जिसके आधार पर निर्मुक्ति आवेदन फाइल नहीं किया जा सकता है इसलिए निर्मुक्ति आवेदन खारिज किए जाने योग्य है। उक्त सूचना के परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि तारीख 30 अगस्त, 2005 की अभिकथित सूचना 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 21(1)(क) के प्रथम परंतुक में यथाअनुध्यात सूचना नहीं है। इस संबंध में याची द्वारा अपने लिखित कथन में विनिर्दिष्ट अभिवाक् किया गया है और यह अभिवाक् विहित प्राधिकारी के समक्ष भी किया गया था और विहित प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में कोई विनिर्दिष्ट निष्कर्ष नहीं दिया गया है। याची द्वारा अपील न्यायालय के समक्ष अपील ज्ञापन में विनिर्दिष्ट अभिवाक् किया गया था जिस पर विचार नहीं किया गया, यद्यपि याची द्वारा इस अभिवाक् पर बल दिया गया था।

¹ 1998 (1) ए. आर. सी. 109 (एस. सी.).

² 2001 (2) ए. आर. सी. 554 (एस. सी.).

³ 2009 (1) ए. आर. सी. 767.

अन्यथा भी उपर्युक्त उपबंध में यथाअनुध्यात सूचना के अभाव में निर्मुक्ति आवेदन ग्राह्य नहीं है और तारीख 30 अगस्त, 2005 की उक्त सूचना अधिनियम की धारा 21(1)(ख) के परंतुक में अनुध्यात अपेक्षाओं के अनुसार नहीं है।

15. याची के विद्वान् काउंसेल ने अपने पक्षकथन के समर्थन में उच्चतम न्यायालय द्वारा मर्टिन एण्ड हैरिस लिमिटेड बनाम षष्टम अपर जिला न्यायाधीश और अन्य वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 4, 7, 9, 11, 12 और 12-ए का अवलंब लिया है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि 6 मास की सूचना आज्ञापक है और निर्मुक्ति आवेदन क्रय करने की तारीख से तीन वर्ष की अवधि बीत जाने के पश्चात् ही फाइल किया जा सकता है । मकान-मालिक द्वारा धारा 21(1)(क) के अधीन आवेदन फाइल करने से पूर्व 6 मास से अन्यून की सूचना दी जानी चाहिए थी, यद्यपि सूचना 3 वर्ष की उपर्युक्त अवधि के पर्यवसान के पूर्व भी जारी की जा सकती है ।

16. याची के काउंसेल ने अनवर हसन खां बनाम मोहम्मद शफ़ी और अन्य² वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 10 का अवलंब लिया है । याची के अनुसार यह निर्णय इस आशय का है कि यदि निर्मुक्ति आवेदन 3 वर्ष बीत जाने के पश्चात् फाइल किया जाता है तो उस दशा में 6 मास की सूचना की तामील की आवश्यकता नहीं है और यह कि मर्टिन एण्ड हैरिस लिमिटेड बनाम षष्टम अपर जिला न्यायाधीश और अन्य¹ वाले मामले में दिए गए पूर्वतर निर्णय पर विचार नहीं किया गया था ।

17. यह दलील दी गई है कि निर्भय कुमार बनाम माया देवी और अन्य वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मार्टिन एण्ड हैरिस वाले मामले के विनिश्चय में अभिव्यक्त मत सही मत है तथापि, उक्त विनिश्चय उस न्यायपीठ के समक्ष पेश किया जाना प्रतीत नहीं होता जिसने अनवर हसन खां² वाले मामले को सुना था और निर्भय कुमार बनाम माया देवी और अन्य वाले मामले के निर्णय के परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि 6 मास की सूचना तथा 3 वर्ष के पश्चात् निर्मुक्ति आवेदन फाइल करने की अपेक्षा आज्ञापक है।

18. यह दलील दी गई है कि उपर्युक्त तीनों निर्णय 6 मास की

¹ 1998 (1) ए. आर. सी. 109 (एस. सी.) .

² 2001 (2) ए. आर. सी. 554 (एस. सी.)

³ 2009 (1) ए. आर. सी. 767.

सूचना और क्रय करने की तारीख 3 वर्ष की अवधि के पश्चात् निर्मुक्ति आवेदन फाइल करने की अपेक्षा से संबंधित हैं। यह निर्णय परंतुक में यथा अनुध्यात सूचना की प्रकृति के संबंध में नहीं हैं। उन्होंने यह दलील दी कि उक्त परंतुक और उपर्युक्त सभी तीनों निर्णयों के तथा हमारे समक्ष निर्दिष्ट अन्य निर्णयों के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि किसी क्रेता द्वारा किराएदारी परिसर की निर्मुक्ति हेतु आवेदन फाइल करने के लिए निम्नलिखित अपेक्षाएं आवश्यक पूरी करनी चाहिए:—

- (i) मकान-मालिक द्वारा प्रश्नगत भवन को क्रय करने की तारीख से 3 वर्ष की अवधि बीत जानी चाहिए ।
- (ii) उक्त परंतुक के अधीन आवेदन की तारीख पर सूचना की तारीख से 6 मास की अवधि पर्यवसित होनी चाहिए । तथापि, ऐसी सूचना 3 वर्ष की अवधि के पर्यवसान के पूर्व भी जारी की जा सकती है ।
- (iii) मकान-मालिक ने इस संबंध में किराएदार को जो सूचना (उपुर्यक्त 6 मास की सूचना) दी है, ऐसी सूचना उक्त परंतुक के अधीन यथा अनुध्यात होनी चाहिए।

19. याची के काउंसेल के अनुसार वह प्रश्न जो इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ उद्भूत हुआ है, उपर्युक्त प्रथम परंतुक के अधीन यथा अनुध्यात तारीख 30 अगस्त, 2005 की अभिकथित सूचना की प्रकृति के संबंध में है । उन्होंने यह दलील दी कि तारीख 30 अगस्त, 2005 की उक्त सूचना उपर्युक्त परंतुक के अधीन यथा अनुध्यात प्रकृति की नहीं है; उच्चतम न्यायालय ने श्रीमती नाज़ुक जहां और अन्य बनाम अपर जिला न्यायाधीश और अन्य वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि उपर्युक्त परंतुक द्वारा अनुध्यात सूचना किराएदार से मौखिक अनुरोध नहीं हो सकता अपितु एक औपचारिक मांग है जो साधारणतया लिखित में होनी चाहिए जिसमें स्पष्ट रूप से अपेक्षित अवधि के पश्चात् खाली कब्ज़े पर बल दिया जाना चाहिए; इस संबंध में एक अन्य मामला अब्दुल जब्बार बनाम षष्टम अपर जिला न्यायाधीश, गोरखपुर और अन्य वाला मामला है जिसमें धारा 21(1)(क) के प्रथम परंतुक का निर्वचन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि परंतुक में दिया गया "इस संबंध में" वाक्य अत्यंत महत्वपूर्ण है । इससे संपत्ति के क्रय के संबंध में किराएदार को नोटिस या सूचना

¹ 1981 (1) ए. आर. सी. 530 (एस. सी.).

² 1989 (1) ए. आर. सी. 277.

अभिप्रेत नहीं हो सकती अपितु क्रयकर्ता के इस आशय के संबंध में यह सूचना देनी है कि किराएदार 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 21(1)(क) के अधीन निर्मुक्ति के लिए आवेदन फाइल करना चाहता है । अतः सूचना विनिर्दिष्ट होनी चाहिए जिसमें किराएदार को यह सूचित किया जाना चाहिए कि क्रयकर्ता को सद्भाविक रूप से प्रश्नगत भवन की आवश्यकता है और यदि वह उसे खाली नहीं करता है तो उसके विरुद्ध निर्मुक्ति आवेदन फाइल किया जाएगा । उस मामले में भी क्रय के संबंध में केवल सूचना दी गई थी जैसा कि वर्तमान मामले में है और न्यायालय ने उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 21(1)(क) के प्रथम परंतुक के अधीन सूचना अनुध्यात नहीं है और इसलिए समान परिस्थितियों में निर्मुक्ति आवेदन विधितः ग्राह्य नहीं है क्योंकि याची का पक्षकथन समान रूप से उक्त निर्णय के अन्तर्गत आता है।

20. यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी के काउंसेल ने उक्त निर्णय का इस आशय के लिए निर्वचन करने का प्रयत्न किया है कि 3 वर्ष की अविध के पर्यवसान के पश्चात् निर्मुक्ति आवेदन फाइल किया जा सकता है और किसी सूचना की आवश्यकता नहीं है, जो निर्भय कुमार बनाम माया देवी और अन्य¹ वाले मामले में अभिव्यक्त मत के अनुसार नहीं है । जब एक बार उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित कर दिया है कि मिटिन एण्ड हैरिस लिमिटेड बनाम षष्टम अपर जिला न्यायाधीश और अन्य² वाले मामले में विधितः सही मत व्यक्त किया गया है तब सूचना की अपेक्षा आज्ञापक है । तथापि, निर्भय कुमार बनाम माया देवी और अन्य¹ वाले मामले में 1972 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 21 (1)(क) के अधीन यथा अनुध्यात सूचना की प्रकृति के संबंध में विचार नहीं किया गया है और इसमें केवल 3 वर्ष की अविध के पर्यवसान की अपेक्षा और 6 मास की सूचना दिए जाने की अपेक्षा पर विचार किया गया है ।

21. याची ने यह दलील दी कि उस पर तारीख 30 अगस्त, 2008 की अभिकथित सूचना की कभी भी तामील नहीं की गई और सूचना की तामील जैसा कि प्रत्यर्थी द्वारा अभिकथित किया गया है, डाकिए से असद्भाविक रूप से दुरभिसंधि करके दिखाई गई है जिसने याची को विहित प्राधिकारी के समक्ष इस आशय का आवेदन फाइल करने के लिए बाध्य किया कि अभिस्वीकृति पर उसके अभिकथित हस्ताक्षरों की हस्तलेख

² 1998 (1) ए. आर. सी. 109 (एस. सी.).

¹ 2009 (1) ए. आर. सी. 767.

विशेषज्ञ द्वारा जांच कराई जाए तथापि, विहित प्राधिकारी द्वारा तारीख 22 मई, 2009 के आदेश द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया ।

22. यह कहा गया है कि याची को अपील में हस्तलेख विशेषज्ञ द्वारा हस्ताक्षरों की परीक्षा कराने के लिए आवेदन (उपाबंध-12) फाइल करने और इस बात को आक्षेपित करने का अधिकार है कि अपील न्यायालय द्वारा तारीख 26 जुलाई, 2010 के आदेश (उपाबंध संख्या 13) द्वारा यह गलत रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि इस पर अंतिम निर्णय के समय विचार किया जाएगा; अपील न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय में अनुचित निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है; चूंकि विहित प्राधिकारी द्वारा की गई आवेदन की खारिजी को अपील या पुनरीक्षण में आक्षेपित नहीं किया गया है इसलिए आदेश अंतिम बन जाता है । यह भी कहा गया है कि इन परिस्थितियों में अपील न्यायालय का उपर्युक्त मत विधि में पूर्णतया त्रृटिपूर्ण है क्योंकि विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश अन्तर्वर्ती आदेश की प्रकृति का था और इसे अंतिम निर्णय के विरुद्ध अपील में आक्षेपित किया जा सकता है; दोनों निचले न्यायालयों के मत इस आशय के हैं कि इस न्यायालय के समक्ष अंतरण आवेदन में तारीख 30 अगस्त, 2005 की अभिकथित सूचना का निर्देश किया गया है जो कि केवल पक्षकारों के अभिवचनों के संबंध में और प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 14 अगस्त, 2006 को विहित प्राधिकारी के समक्ष उस समय फाइल की गई तारीख 30 अगस्त, 2005 की सूचना के संबंध में था जब निर्मुक्ति आवेदन फाइल किया गया था, अतः इसे दृष्टिगत करते हुए निचले न्यायालय इस बात पर विचार करने में पूर्णतया विफल रहे हैं कि तारीख 30 अगस्त, 2005 की अभिकथित सूचना की याची पर विधि के अनुसार तामील की गई थी।

23. इसके पश्चात् यह दलील दी गई है कि आनन्द कुमार गुप्ता से क्रय किया गया भवन दो भागों में है जिसमें से एक याची की किराएदारी के अधीन है और दूसरा भाग आबंटन आदेशों के अधीन आवेदक-प्रत्यर्थी अर्थात् श्री विमल कुमार महर्षि की किराएदारी के अधीन है; याची ने अपने लिखित कथन में इस आशय का विर्निदिष्ट अभिवाक् किया है कि यह सही है कि किराएदारी के अधीन परिसर के विभाजन के पश्चात् यह आवेदक के हिस्से में आया है जो स्वयं भी भवन के दक्षिणी भाग में एक किराएदार था जिसमें पांच बड़े कक्ष, दो बरामदे, लगभग 200 वर्ग गज का एक बड़ा आंगन और प्रथम तल पर एक कक्ष सम्मिलित था जो पुरानी टिन से अच्छादित है; आवेदक ने अपने निर्मुक्ति आवेदन में इन तथ्यों को छुपाया है

और इसलिए यह आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है; इन प्रकथनों से यह स्पष्ट होता है कि वह मकान के दक्षिणी भाग का किराएदार है और आवेदक के ये प्रकथन कि उसने अपने 3 भाइयों के साथ संपूर्ण मकान तारीख 19 मई, 2003 के विक्रय-विलेख द्वारा क्रय किया था, उसकी प्रतिरक्षा नहीं करते क्योंकि वह उस मकान के भाग सहित संपूर्ण मकान के चौथाई भाग का सह-स्वामी बन गया है जो कि प्रत्यर्थी की किराएदारी के अधीन है और वह भवन के उक्त 3/4 भाग का किराएदार बना रहा है।

24. यह दलील दी गई है कि यह साबित करने का भार प्रत्यर्थियों पर था कि उन्होंने रिक्ति समर्पित कर दी है और रिक्ति के बारे में जिला मजिस्ट्रेट को सूचित कर दिया है जैसा कि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 15 और 16 में अपेक्षित है तथापि, इस संबंध में अभिलेख पर कुछ नहीं है । अतः मकान-मालिक द्वारा उपदर्शित विभाजन की कहानी न तो साबित की गई है और न ही साबित है । जहां तक कुटुंब के सदस्यों की संख्या का संबंध है, यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी के क्टुंब में केवल चार सदस्य हैं अर्थात विमल कुमार महर्षि की पत्नी, 2 पुत्रियां और एक पुत्र जिनके लिए उनके कब्जे वाला आवास पर्याप्त है और मकान-मालिक को विवादित परिसर की वास्तविक आवश्यकता नहीं है; अभिकथित वास्तविक आवश्यकता विद्यमान नहीं है और काल्पनिक है । आवेदक अर्थात विमल कुमार महर्षि कुमार, का भाई 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या में यथा परिभाषित क्टुंब की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है । अन्यथा भी दोनों पक्षकार इस संबंध में भी मामले को जानते हैं । अतः उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों में रिट याचिका में आक्षेपित आदेश अभिखण्डित किए जाने योग्य हैं और निर्मृक्ति आवेदन संपूर्ण खर्चीं सहित खारिज किए जाने योग्य है।

25. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि याची के काउंसेल की यह दलील कि धारा 21(1) के परंतुक 1 के अधीन सूचना की किराएदार पर तामील नहीं की गई है, सही नहीं है क्योंकि तारीख 30 अगस्त, 2005 की सूचना की किराएदार पर सम्यक्तः तामील की गई थी । इस संबंध में याची के लिखित कथन के पैरा 5 का और शपथ-पत्र का जो उपाबंध-5 के रूप में संलग्न है, निर्देश किया गया है, जिनमें यह प्रकथन नहीं किया गया है कि वह पता जिस पर सूचना भेजी गई थी, सही नहीं है ।

26. इसके पश्चात् अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन निर्मुक्ति के लिए आवेदन विवादित मकान के क्रय करने की तारीख से अर्थात तारीख 16 अगस्त, 2003 से 3 वर्ष के पश्चात् तारीख 14 अगस्त, 2006 को फाइल किया गया था और चूंकि यह आवेदन सूचना की तामील की तारीख से 6 मास के पश्चात् फाइल किया गया था इसलिए परंतुक के उपबंध का पूर्णतया अनुपालन किया गया था।

27. यह कहा गया है कि तारीख 31 अगस्त, 2008 की सूचना तथ्यतः धारा 21(1) के परंतुक के अधीन संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के अधीन किराएदारी के पर्यवसान के लिए नहीं है और इसलिए किराएदारी बेदखली के आदेश की तारीख से 1 वर्ष की अवधि के पर्यवसान पर विधि के प्रवर्तन द्वारा अधिनियम की धारा 21(6) के अधीन अवधारित हो गई थी क्योंकि परंतुक के अधीन दी गई सूचना केवल किराएदार को दी गई सूचना है और उक्त सूचना के लिए अधिनियम और नियमों के अधीन कोई प्रारूप विहित नहीं किया गया है । अतः इस दलील के अनुसार मकान-मालिक क्रय करने की तारीख से 3 वर्ष के पश्चात् आवेदन फाइल कर सकता है और सूचना की 3 वर्ष की अवधि के पर्यवसान से पूर्व तामील की जा सकती है ।

28. यह भी दलील दी गई है कि जहां तक याची द्वारा श्रीमती नाज़ुक जहां और अन्य बनाम अपर जिला न्यायाधीश और अन्य वाले मामले के निर्णय का अवलंब लेने का संबंध है, यह वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होता है । उपर्युक्त मामले में अभिलेख पर पूरे तथ्य मौजूद न होने के कारण उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में यह मत व्यक्त किया था कि विचारण न्यायालय में सूचना की वैधानिकता के प्रश्न को नहीं उठाया गया था । इन परिस्थितियों में उच्चतम न्यायालय ने पश्चात्वर्ती निर्णय का अवलंब नहीं लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि परंतुक के अधीन सूचना संपत्ति अंतरण के अधीन सूचना नहीं है । उच्चतम न्यायालय द्वारा नन्द बल्लभ गुरनानी बनाम श्रीमती मकबूल बेगम वाले मामले में निर्णय के पैरा 6 में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है :—

"सुसंगत परंतुक न्यायालय को क्रय की तारीख से न कि विक्रय-विलेख के रजिस्ट्रीकरण की तारीख से 3 वर्ष के भीतर आवास

¹ 1981 (1) ए. आर. सी. 530 (एस. सी.).

² 1981 ए. आर. सी. 516 (एस. सी.).

की निर्मुक्ति के लिए आवेदन ग्रहण करने से विवर्जित करता है।"

29. उपाबंध संख्या 2 के रूप में उपाबद्ध सूचना स्पष्ट रूप से किराएदार को यह सूचना देने का उल्लेख करती है कि संपत्ति प्रत्यर्थी द्वारा क्रय कर ली गई है और चूंकि विभाजन में उक्त संपत्ति प्रत्यर्थी-मकान-मालिक के हिस्से में आई है, इसलिए किराया और कर उसे संदत्त किए जाएं । अतः अधिनियम की धारा 21(1)(क) के परंतुक के अधीन यह एक पर्याप्त सूचना है । यह कहा गया है कि विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि याची पर सूचना की सम्यक्तः तामील की गई थी और यह बात अपील न्यायालय को भी बताई गई थी ।

30. अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन प्रथम परंतुक के क्षेत्र के संबंध में यह दलील दी गई है कि परंतुक के अधीन उपबंधित 3 वर्ष की अविध एक प्रकार का विलंब काल है जो किराएदार के संरक्षण के लिए आशियत है और 3 वर्ष की अविध के पर्यवसान के पश्चात् किराएदार को दिए गए संरक्षण की आगे कोई सुसंगतता नहीं रहती है । इस संबंध में निर्भय कुमार बनाम माया देवी और अन्य वाले मामले का अवलंब लिया गया है ।

31. प्रत्यर्थी की ओर से यह भी दलील दी गई है कि मकान-मालिक द्वारा जिसने किराएदार के अधिभोग वाली संपत्ति क्रय नहीं की है, धारा 21(1)(क) के अधीन कोई आवेदन फाइल करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि मकान-मालिक को किराएदार के ऊपर सूचना की तामील करना चाहिए; परंतुक केवल ऐसे किसी मकान-मालिक के अधिकारों पर निर्बंधन अधिरोपित करता है जिसने 3 वर्ष से किराए पर दी गई किराएदार के अधिभोग वाली संपत्ति क्रय की है और मकान-मालिक जिसने कोई भवन क्रय किया है, 6 मास की सूचना की तामील करके अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अधीन आवेदन फाइल कर सकता है । मकान-मालिक द्वारा 6 मास की उक्त सूचना की क्रय करने की तारीख से 3 वर्ष की अवधि के पर्यवसान से पूर्व भी तामील की जा सकती है और मकान-मालिक जिसने 6 मास की सूचना की पहले ही तामील कर ली है 3 वर्ष की अवधि के पश्चात् धारा 21(1)(क) के अधीन आवेदन फाइल करने के लिए स्वतंत्र है क्योंकि 3 वर्ष की अवधि बीत जाने के पश्चात् इस धारा का प्रथम परंतुक लागू नहीं है और केवल 6 मास की सूचना आवश्यक है।

_

¹ 2009 (1) ए. आर. सी. 767.

32. जहां तक वास्तविक आवश्यकता का संबंध है, यह दलील दी गई है कि दोनों निचले न्यायालयों ने तथ्यतः यह मत व्यक्त किया है कि मकान-मालिक की आवश्यकता सद्भाविक और वास्तविक है और मकान-मालिक को याची की किराएदारी के अधीन विवादित भवन की आवश्यकता है । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 1 का विनिश्चय करते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि मकान-मालिक की आवश्यकता वास्तविक है ।

33. न्यायालय ने अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह भी मत व्यक्त किया कि तुलनात्मक किठनाई जो मकान-मालिक भुगत रहा है, किराएदार द्वारा भोगी गई किठनाई से अधिक है और किराएदार ने इस आशय का कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है कि उसने मुकदमेदारी के लंबन के दौरान कोई वैकल्पिक आवास तलाश करने का कोई प्रयत्न किया है। न्यायालय ने जगदीश प्रसाद बनाम अपर जिला न्यायाधीश, कानपुर और अन्य¹ और सिद्धनाथ शुक्ला बनाम जे. एस. सी. सी. (विहित प्राधिकारी) लखनऊ और अन्य² वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किया कि जहां किराएदार ने मुकदमेदारी के दौरान किसी भवन को तलाश करने का कोई प्रयत्न न किया हो वहां उसे वास्तविक आवश्यकता या तुलनात्मक किठनाई का प्रश्न उठाने का कोई अधिकार नहीं है।

34. न्यायालय ने धारा 21(1)(क) के अधीन 6 मास की पूर्व सूचना के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया कि किराएदार द्वारा किया गया यह पक्षकथन कि उसपर किसी सूचना की तामील नहीं की गई थी, सही नहीं है और अभिलेख पर की सामग्री के विरुद्ध है । न्यायालय ने इस संबंध में कागज संख्या ग-125 का निर्देश किया है जो स्थानांतरण का आवेदन है । उक्त स्थानांतरण आवेदन के पैरा 5 में प्रीतम सिंह के पैरवीकार विनीत कुमार ने यह स्वीकार किया है कि विवादित आवास को खाली करने के संबंध में तारीख 30 अगस्त, 2005 को सूचना प्राप्त हुई थी और इस स्वीकृति को दृष्टिगत करते हुए किराएदार किसी अनुतोष को पाने का हकदार नहीं है ।

35. इस संबंध में उल्लिखित निष्कर्ष इस प्रकार हैं :-"विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत वाद की पोषणीयता के

¹ 1993 (2) ए. आर. सी. 63.

² 2008 (70) ए. एल. आर. 539.

संबंध में तर्क प्रस्तुत करते हुए यह कहा गया है कि धारा 21(1ए) यू. पी. एक्ट नं. 13 सन 1972 के अधीन वाद दायर करने के पूर्व 6 माह का नोटिस दिया जाना आवश्यक है । प्रार्थी द्वारा विपक्षी को विवादित मकान के संबंध में वाद दायर करने के पूर्व कोई नोटिस नहीं दिया गया जो नोटिस दिनांक 30.8.2005 प्रार्थी द्वारा अपने प्रार्थना पत्र में देना कहा है वह विपक्षी को कभी प्राप्त नहीं हुआ । इस संबंध में विपक्षी द्वारा अपने प्रतिवाद पत्र व अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रार्थी की ओर से कोई नोटिस दिनांक 30.8.2005 उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ । ऐसी स्थिति में चूंकि विपक्षी को धारा 21 (1ए) यू. पी. एक्ट नम्बर 13 सन 1972 के अधीन आज्ञापक नोटिस प्राप्त नहीं हुआ । इसलिए प्रस्तुत वाद पोषणीय नहीं है और इसलिए खारिज किए जाने योग्य है । इस संबंध में विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपने मामले के समर्थन में महेन्द्र पाल सिंह बनाम द्वितीय अपर जिला जज, देहरादून और अन्य, ए. आर. सी. 1993 (1) पेज 210 के वाद का हवाला दिया है । जिसमें माननीय उच्च न्यायालय द्वारा इस आशय का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि वाद दायर करने के 6 माह पूर्व नोटिस दिया जाना धारा 21 (1ए) के तहत आज्ञापक है तथा उक्त आज्ञापक प्राविधान का अनुपालन नहीं करने पर धारा 21 (1ए) यू. पी. एक्ट नम्बर-13 सन् 1972 के अधीन प्रस्तृत किया गया प्रार्थना पत्र पोषणीय नहीं है । इस संबंध में पत्रावली का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि विपक्षी की ओर से अपने प्रतिवाद पत्र व अपने साक्ष्य में इस आशय का कथन किया गया है कि उसे नोटिस दिनांक 30.8.2005 कभी प्राप्त नहीं हुआ । इस संबंध में प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा पत्रावली पर दाखिल कागज संख्या ग-129 की ओर न्यायालय का ध्यान आकृष्ट कराया गया। काग़ज सं. ग-129 सिविल विविध स्थानान्तरण प्रार्थना पत्र संख्या 323/09 के साथ माननीय उच्च न्यायालय में दाखिल शपथ-पत्र की प्रति है जिसके पैरा 5 में विपक्षी प्रीतम सिंह बिश्नोई के पैरवीकार विनीत कुमार द्वारा दाखिल शपथ-पत्र के पैरा 5 में स्पष्ट रूप से इस तथ्य को स्वीकार किया है कि विवादित मकान के संबंध में प्रार्थी को नोटिस दिनांक 30.8.2005 को विवादित मकान को खाली करने के संबंध में भेजा गया था । इस प्रकार यह स्वीकृत रूप से साबित है कि धारा 21 (1ए) यू. पी. एक्ट नम्बर-13 सन 1972 के अधीन उपबन्धित आज्ञापक नोटिस विपक्षी द्वारा स्वयं विवादित

मकान को खाली करने के संबंध में प्राप्त किया जाना स्वीकार किया गया है । तथा विपक्षी कोई लाभ उक्त तर्क से प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है कि उसे प्रार्थी ने नोटिस नहीं दिया गया ।

उपरोक्त साक्ष्य का विश्लेषण करते समय मेरे द्वारा यह अवधारित किया गया है कि विवादित मकान की प्रार्थी को सद्भाविक आवश्यकता है तथा तुलनात्मक कठिनाई भी प्रार्थी के पक्ष में है । ऐसी दशा में प्रार्थी की ओर से प्रस्तुत किया गया प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 21 (1ए) एक्ट नम्बर 13 सन् 1972 स्वीकार किए जाने योग्य है ।

प्रस्तुत मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए विपक्षी को मकान खाली करने से होने वाली क्षति को देखते हुए विवादित भवन का 2 वर्ष का किराया बतौर क्षतिपूर्ति के रूप में विपक्षी को दिलाया जाना न्यायोचित होगा ।

आदेश

प्रार्थी की ओर से प्रस्तुत किया गया प्रार्थना पत्र अन्तर्गत आदेश 21(1ए) यू. पी. एक्ट नम्बर 13 सन् 1972 के अधीन स्वीकार किया जाता है । विपक्षी को निर्देशित किया जाता है कि वह इस निर्णय के दिनांक से 30 दिन के अन्दर विवादित भवन का दखल प्रार्थी को हस्तान्तरित कर दे तथा प्रार्थी विपक्षी को बतौर क्षतिपूर्ति के रूप में 2 वर्ष का किराया मु. 2952/- रुपये अदा करे ।

दिनांक: 16.1.2010 ह. अपठनीय

(धीरेन्द्र कुमार)

सिविल जज सी. डि.

बिजनौर ।"

36. निचले अपील न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 2 का विनिश्चय करते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि विवादित भवन के लिए मकान-मालिक की आवश्यकता वास्तविक है । इस संबंध में न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :—

"21. जहां तक तुलनात्मक कठिनाई का प्रश्न है, जब एक बार मकान-मालिक की सद्भावी व वास्तविक आवश्यकता साबित हो जाती है । तब वहां तुलनात्मक कठिनाई कोई महत्व नहीं रखती यदि किरायेदार को ऐसी स्थिति में तुलनात्मक कठिनाई भी हो, तब भी इस आधार पर प्रार्थी मकान-मालिक के प्रार्थना पत्र को निरस्त नहीं किया जा सकता जैसा कि जगदीश प्रसाद बनाम नवम अपर जिला जज कानपुर, ए. सी. आर. 1993(2) इलाहाबाद पेज 63 में भी अधिनिर्णीत किया गया है । इसके अलावा भी प्रार्थी जिसकी अब मृत्यु हो चुकी है, की पत्नी उसकी दो पुत्रियां व एक पुत्र है तथा तीनों बच्चे अध्ययनरत हैं । भवन के अलावा रहने के लिए उनके पास कोई और भवन बिजनौर एवं उ. प्र. में कहीं पर भी नहीं है । जबिक अपीलार्थी के पास उसके गांव पालनपुर में अपना मकान है । अतः तुलनात्मक कठिनाई भी अपीलार्थी की अपेक्षा प्रार्थी की अधिक साबित होती है ।

- 22. इस मामले में दिनांक 14.8.2006 को प्रार्थी द्वारा एक्ट 13/72 की धारा 21 (1) (ए) के अन्तर्गत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया था जिसकी तामील विपक्षी/अपीलार्थी पर होने के पश्चात् उसके द्वारा अपना प्रतिवाद पत्र 28.2.2007 को विचारण न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था, तब से अब तक विचारण न्यायालय में मुकदमा लम्बित रहने के दौरान व अपीलीय न्यायालय में अपील लम्बित रहने के दौरान प्रार्थी द्वारा वैकल्पिक भवन की तलाश का कोई प्रयत्न नहीं किया गया । इससे भी तुलनात्मक कठिनाई अपीलार्थी की न होकर प्रार्थी की साबित होती है ।
- 23. अतः उपरोक्त विस्तृत विवेचना के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि प्रार्थी की प्रश्नगत भवन के लिए आवश्यकता सद्भावी, वास्तविक व तीव्र है तथा प्रश्नगत भवन खाली न होने की स्थिति में उसे विपक्षी/अपीलार्थी के मुकाबले अत्यधिक तुलनात्मक किनाई होगी । अतः इस संबंध में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया निष्कर्ष पूर्णरूप से विधि, तथ्य व साक्ष्य पर आधारित है । अतः यह विचारण बिन्दु तद्नुसार निस्तारित किया जाता है ।
- 24. उपरोक्त विवेचना के पश्चात् मैं इस रेंट कन्ट्रोल अपील में कोई बल नहीं पाता हूं इसलिए यह अपील खारिज होने योग्य है।

आदेश

यह रेंट कन्ट्रोल अपील सव्यय खारिज की जाती है । रिट आदेश दिनांक 17.2.2010 रिक्त किया जाता है ।

दिनांक 22.1.2011

ह. अपठनीय

(राजेन्द्र कुमार,11) अपर जिला जज कोर्ट नं. 2 बिजनौर ।"

37. तत्पश्चात् यह दलील दी गई है कि दोनों निचले न्यायालयों ने याची के हक में कठिनाई से संबंधित निष्कर्ष अभिलिखित किया है और वास्तविक आवश्यकता तथा कठिनाई से संबंधित तथ्य के एक जैसे निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए तथ्य का यह प्रश्न याचिका में आक्षेपित करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता जब तक कि उक्त निष्कर्ष समुचित या अभिलेख की सामग्री के विरुद्ध उपदर्शित न किए जाएं।

38. जहां तक याची के काउंसेल द्वारा सूचना की तामील के संबंध में दी गई दलील का संबंध है, मकान-मालिक की ओर से यह दलील दी गई है कि सूचना रिजस्ट्रीकृत डाक से भेजी गई थी और यह इस आधार पर यह पाया गया है कि तथ्यतः याची पर इस कारण से इसकी सम्यक्तः तामील हुई है कि किराएदार ने निचले न्यायालयों के समक्ष अभिलेख पर फाइल अपने लिखित कथन में अभिस्वीकृति पर अपने हस्ताक्षरों से इंकार नहीं किया है।

39. अंततः यह दलील दी गई है कि जहां तक किराएदारी के समर्पण का संबंध है, याची-किराएदार की ओर से फाइल लिखित कथन और साक्ष्य में फाइल शपथ-पत्रों के परिशीलन मात्र से स्पष्ट रूप से यह साबित हो जाता है कि उसके द्वारा निचले न्यायालय में किराएदारी के समर्पण के संबंध में कोई पक्षकथन नहीं किया गया है । उक्त मुद्दा निचले न्यायालयों के समक्ष कभी भी नहीं उठाया गया है और इसलिए अब याची इस मुद्दे को रिट याचिका में नहीं उठा सकता । अतः याचिका खर्चों सहित खारिज किए जाने योग्य है ।

40. इसके पश्चात् यह दलील दी गई है कि याची द्वारा अवलंब लिए गए निर्भय कुमार बनाम माया देवी और अन्य वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का पैरा 6 लागू नहीं होता है क्योंकि यह मामला सूचना की प्रकृति से संबंधित नहीं है । इसके अतिरिक्त उक्त निर्णय के पैरा 6 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वहां 3 वर्ष की अवधि सूसंगत है जहां स्वामित्व के संबंध में कोई परिवर्तन है अर्थात

¹ 2009 (1) ए. आर. सी. 767.

तद्द्वारा निर्मुक्ति आवेदन क्रय की तारीख से 3 वर्ष की अवधि बीत जाने के पश्चात् ही फाइल किया जा सकता है और निर्णय से यह भी स्पष्ट है कि सूचना आज्ञापक है। तथापि, ऐसी सूचना उपर्युक्त 3 वर्ष की अवधि के पर्यवसान के पूर्व भी दी जा सकती है। तीन वर्ष की अवधि के पर्यवसान के पश्चात् किराएदार को बेदखली से दिए गए संस्क्षण की आगे कोई सुसंगतता नहीं रहती। इसके पश्चात् केवल सूचना का प्रश्न और 3 वर्ष की अवधि बीत जाने के पश्चात् सूचना का प्रश्न उद्भूत होगा और जहां 6 मास की सूचना दी गई है वहां निर्मुक्ति आवेदन फाइल किया जा सकता है।

41. याची के विद्वान काउंसेल ने जवाब में यह दलील दी कि प्रत्यर्थी द्वारा अवलंब लिए गए निर्णय प्रभेदित हैं । इस संबंध में उन्होंने यह दलील दी कि 1978 वाले मामले में दिया गया विनिश्चय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होता है क्योंकि उक्त मामले में सूचना की प्रकृति के संबंध में प्रश्न अन्तर्वलित नहीं था अपित् मामला 3 वर्ष के बीत जाने के पश्चात निर्मृक्ति आवेदन फाइल करने से संबंधित था और उस संदर्भ में इस न्यायालय ने निर्णय के पैरा 5 में यथा उल्लिखित मत व्यक्त करते हुए अंततः यह अभिनिर्धारित किया था कि निर्मृक्ति आवेदन क्रय करने की तारीख से 3 वर्ष के पश्चात ही फाइल किया जा सकता है और यह अवधि विक्रय-विलेख के रजिस्ट्रीकरण की तारीख से संगणित होगी न कि विक्रय-विलेख की तारीख से । यह कहा गया है कि इस न्यायालय के उक्त निर्णय के पैरा 5 में उच्चतम न्यायालय द्वारा बी. एन. सरीन बनाम अजीत कुमार पोपलई और अन्य¹ वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 6 के उपबंधों का उद्देश्य यह है कि किसी क्रेता द्वारा किराए पर दिए गए परिसर के क़ब्जे की वापसी के लिए आवेदन तब तक ग्राह्य नहीं होगा जब तक कि क्रय करने की तारीख से 5 वर्ष की अवधि व्यतीत न हो जाए और उपर्युक्त पैरा 5 के परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम के अधीन कोई सुचना दिए जाने की अपेक्षा नहीं है जैसा कि 1972 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 21(1)(क) के अधीन अपेक्षित है । इन तथ्यों और परिस्थितियों में उपर्युक्त विनिश्चय किसी भी प्रकर से वर्तमान मामले को लागू नहीं होता है।

42. तत्पश्चात् यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल

¹ ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 432.

द्वारा अवलंब लिए गए मामले के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि इस मामले में पश्चात्वर्ती मकान-मालिक ने किराए पर दिए गए परिसर को दिए जाने के पश्चात् परिसर खाली करने के लिए किराएदार को सूचना भेजी थी और इसके अतिरिक्त एक अन्य नोटिस भी दिया था । उस मामले में किराएदार की ओर से यह दलील दी गई थी कि परिसर को खाली करने के लिए दी गई प्रथम सूचना में 6 मास की अवधि विनिंदिष्ट नहीं की गई है और दूसरी सूचना विधिमान्य सूचना नहीं थी क्योंकि निर्मुक्ति आवेदन 6 मास की अवधि बीत जाने के पश्चात् फाइल किया गया था । इन परिस्थितियों में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सूचना जारी करने और निर्मुक्ति आवेदन फाइल करने के बीच 6 मास की अवधि व्यतीत होनी चाहिए ।

43. यह भी दलील दी गई है कि उच्चतम न्यायालय ने पैरा 6 में यह अभिनिर्धारित किया कि मकान-मालिक ने किराएदार को "अपनी ओर से" सूचना दी थी जिसका कि उच्चतम न्यायालय ने अब्दल जब्बार बनाम षष्टम अपर जिला न्यायाधीश, गोरखपुर और अन्य¹ वाले मामले में निर्वचन किया है । जहां तक उच्चतम न्यायालय द्वारा औपचारिकताओं अर्थात संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 6 की अपेक्षा और औपचारिकताओं के संबंध में अभिव्यक्त मत का संबंध है, यह कहा गया है कि न्यायालय इसे धारा में दिए गए उपबंध के अधीन अनुध्यात सूचना के रूप में नहीं पढ सकता । अतः संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के अधीन किसी सूचना को उपर्युक्त परंतुक में अनुध्यात सूचना के रूप में नहीं समझा जा सकता क्योंकि दोनों ही धाराएं भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त होती हैं । निर्णय से यह भी प्रतीत होता है कि उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि इस प्रकार अभिनिर्धारित करना परंतुक में शब्दों को बढ़ाने के बराबर होगा जोकि स्पष्टतया अनुज्ञेय नहीं है । अतः उनके अनुसार ऊधव राम वाले मामले में दिया गया निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को लागू नहीं होता है।

44. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि स्वीकृततः याची ने सुसंगत समय पर सूचना से संबंधित रसीदों और अभिस्वीकृति पर अपने हस्ताक्षरों से संबंधित विवाद्यकों को अर्थात् सूचना की तामील से संबंधित विवाद्यक को नहीं उठाया था । वस्तुतः उसने उस समय सूचना पर अपने

¹ 1989 (1) ए. आर. सी. 277.

हस्ताक्षर होने से इंकार नहीं किया जब उसने लिखित कथन फाइल किया था या विहित अधिकारी के समक्ष इस संबंध में आवेदन फाइल किया था और यहां तक कि साक्ष्य के बंद किए जाने तक भी उसने यह विवाद्यक नहीं उठाया । याची ने यह विवाद्यक अंतिम सुनवाई के समय तब उठाया जब निरीक्षण करने के पश्चात् उसका दावा प्रभावित हुआ । साधारणतया सब्त का भार ऐसे व्यक्ति पर होता है जिसने विवाद्यक उठाया हो या जिस पर कोई मुद्दा उठाया हो या उसने वह विवाद्यक पहले न उठाया हो । अपील न्यायालय याची के आवेदन को खारिज करने में सही था क्योंकि याची के लिए ऐसा कोई अवसर नहीं था कि वह उस मुददे को उस समय उठाए जब दूसरे पक्षकार द्वारा पहले अपनी दलीलें पूरी कर ली गई हों । यदि ऐसी कोई अनुज्ञा दी जाती है तब हस्ताक्षरों को साबित करने के लिए नए सिरे से साक्ष्य का अवसर देना आवश्यक होगा और तत्पश्चात मामला पुनः साक्षियों की परीक्षा के प्रक्रम पर चला जाएगा । याची द्वारा फाइल किए गए आवेदन (कागज संख्या 105-ग) से यह स्पष्ट होता है कि उसे सूचना की तामील से संबंधित तथ्य के बारे में जानकारी थी तथापि, उसने वस्तुतः अपने लिखित कथन में यह अभिवाक नहीं किया । उसने यह अभिवाक दलीलों की तैयारी के दौरान किया । इसके पश्चात उसने आवेदन को फाइल करने के लिए अपने काउंसेल को बदला । उसने आवेदन केवल इस आधार पर फाइल किया कि उसे यह पता चला है कि उसके काउंसेल द्वारा यह अभिवाक नहीं किया गया है। मामले को पीछे ले जाने के लिए यह एक विधिक आधार नहीं है जो कि कई वर्षों के पश्चात सुनवाई में आया था और जिसमें पक्षकारों द्वारा साक्ष्य इत्यादि पूरा कर लिया गया था । जहां तक भाई से भवन के हिस्से का प्रश्न है, किसी किराएदार को निर्मुक्ति की कार्यवाहियों को आक्षेपित करने का अधिकार नहीं है क्योंकि सह-स्वामियों द्वारा दी गई सूचना तब तक पर्याप्त सूचना होगी जब तक इसके प्रतिकूल साबित न किया जाए कि निर्मक्ति आवेदन फाइल करने के लिए सह-स्वामी से सहमति नहीं ली गई थी ।

45. इस मामले में किराएदारी के समर्पण का प्रश्न किसी भी प्रकार से अन्तर्वलित नहीं है । याची के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि किराएदार भवन के एक भाग का जिसमें वह किराएदार था, पहले अपनी किराएदारी का समर्पण करे, उचित प्रतीत नहीं होती । चूंकि याची-किराएदार द्वारा इस संबंध में कोई पक्षकथन भी नहीं किया गया है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मकान-मालिक ने निर्मुक्ति आवेदन में उसकी किराएदारी को छुपाया है । यह उल्लेख किया जा सकता है कि निर्मुक्ति

आवेदन मकान-मालिक द्वारा फाइल किया गया है और चूंकि प्रत्यर्थी विमल कुमार महर्षि ने अपने भाई के साथ अपना स्वामित्व अधिकार अर्जित किया है इसलिए उसे निर्मुक्ति आवेदन फाइल करने का अधिकार है।

- 46. निचले न्यायालय ने स्पष्ट रूप से वी. के. महर्षि, उसकी पत्नी, पुत्र और पुत्रियों के लिए भवन की वास्तविक आवश्यकता के संबंध में तथ्य का निष्कर्ष अभिलिखित किया है । विक्रय-विलेख अभिलेख पर है जो इस तथ्य को साबित करता है कि श्री वी. के. महर्षि मकान-मालिक था ।
- 47. अभिलेख से यह भी साबित होता है कि विभाजन हुआ था जिसमें श्री बिश्नोई किराएदार था । उपर्युक्त सूचना संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के अधीन नहीं है अपितु यह सूचना 1972 के अधिनियम सं. 13 की धारा 21(1) (क) के अधीन सूचना है इसलिए यह याची के विद्वान् काउंसेल की दलीलों को कोई सहायता प्रदान नहीं करेगी । मकान-मालिक द्वारा भवन को क्रय किए जाने के संबंध में अधिनियम की धारा 21(ख) के अधीन यथा अपेक्षित सूचना द्वारा पर्याप्त सूचना दी गई है और सूचना तथा निर्मुक्ति आवेदन विधि के अनुसार फाइल किया गया है और इसलिए निचले न्यायालयों ने इसे ठीक ही मंजूर किया है जैसा कि याची द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन से स्पष्ट है कि उसने सूचना पर न तो अपने हस्ताक्षर को विवादित किया है और न ही उसने कार्यवाहियों में उपस्थित होकर इसकी (सूचना की) प्राप्ति से इंकार किया है और इसलिए इस मामले में विशेषतया इस विलंबित प्रक्रम पर हस्तलेख विशेषज्ञ द्वारा परीक्षा कराने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है ।
- 48. उपर्युक्त अभिकथित कारणों से न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि निचले न्यायालयों ने आक्षेपित आदेशों को पारित करने में अवैधता नहीं की है और वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित आदेशों को अभिखण्डित करने के लिए हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।
- 49. तद्नुसार रिट याचिका खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई।

मह.

टीनी उर्फ एन्टोनी

बनाम

जैकी और अन्य

तारीख 27 अक्तूबर, 2011 न्यायमूर्ति (श्रीमती) के. हेमा

संविधान, 1950 — अनुच्छेद 226 तथा 227 [सपिटत सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 तथा आदेश 43 का नियम 1(द) और केरल नगर पालिका अधिनियम] — रिट — विधिपूर्ण कारबार को अवांछनीय तरीकों से बलपूर्वक बन्द कराना — इस संबंध में प्रवंचनापूर्ण और बेईमानीपूर्वक सम्बन्धित निगम से निर्देश प्राप्त करना तथा इस आधार पर न्यायालय से डिक्री प्राप्त करना — यदि यह साबित हो जाता है कि किसी व्यक्ति ने अन्य व्यक्ति के विधिपूर्ण कारबार को बन्द कराने तथा उसे तंग और परेशान करने के लिए प्रवंचनापूर्ण तथा बेईमानीपूर्ण तरीकों से सम्बन्धित निगम से निर्देश प्राप्त कर लिया है तथा उस आधार पर बेईमानीपूर्वक न्यायालय से कोई डिक्री प्राप्त कर ली है तो उन्हें किसी भी परिस्थिति में कायम नहीं रखा जा सकता है तथा इन्हें अभिखंडित कराने के लिए, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 तथा 227 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका ग्रहण किए जाने योग्य होगी।

वर्तमान मामले में, याचिका मुख्यतः निम्नलिखित प्रकथनों पर फाइल की गई है :— याची के पिता ने द्वितीय प्रत्यर्थी के पिता से पट्टे पर एक दुकान ली थी । मूल मकान-मालिक और किराएदार दोनों की मृत्यु हो गई । याची, उसके भाई और माता किराएदार के रूप में निरन्तर बने रहे और वे "सिटी फोटोस्टेट" के अभिनाम से दुकान में फोटोस्टेट, टेलीफोन बूथ, फैक्स, लेमिनेशन आदि का कारबार करते रहे । पूर्व में वर्ष 1986 तक दुकान में कपड़े का कारबार होता रहा था । याची दुकान के लिए वृत्तिक कर और बिजली बिल का संदाय करता रहा । उसके कर्मचारी भी श्रम विभाग में रिजस्ट्रीकृत हैं । मूल मकान-मालिक की मृत्यु के पश्चात्, उसके बच्चों (उनमें से एक द्वितीय प्रत्यर्थी है) ने दुकान में अतिचार करने की कोशिश की और तारीख 16 अक्तूबर, 2008 को याची और उसकी माता द्वारा दुकान से बलपूर्वक बेदखली रोकने के लिए मूल वाद सं. 2881/2006 फाइल की

गई । वाद, तारीख 16 अक्तूबर, 2008 को डिक्री कर दी गई और व्यादेश मंजुर कर लिया गया । निर्णय की प्रति प्रदर्श पी-4 है । लगभग 2 वर्ष पश्चात वर्ष 2010 में प्रथम प्रत्यर्थी ने दुकान में अतिचार करने की कोशिश की और दुकान की दीवारों को नष्ट कर दिया और दुकान में चल रहे कारबार में बाधा पहुंचाई, इस दावे पर कि उसने दुकान क्रय कर ली है । याची और उसकी माता ने प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध उसकी अवैध कार्यों पर प्रतिषेध लगाने के लिए एक वाद तारीख 16 जुलाई, 2010 को मूल वाद सं. 2180/2010 फाइल की । उक्त वाद में, वाद-पत्र की प्रति प्रदर्श पी-5 है । प्रथम प्रत्यर्थी ने भी संपत्ति के ऊपर अनन्य हक का दावा करते हुए याची और उसकी माता तथा उसके भाइयों के विरुद्ध एक वाद, मूल वाद सं. 2426/2010 फाइल की । उक्त वाद में प्रथम प्रत्यर्थी ने याची और उसकी माता के विरुद्ध व्यादेश के लिए भी एक अन्तर्वर्ती आवेदन फाइल किया किन्तु इसे खर्ची सहित तारीख 6 सितम्बर, 2010 को खारिज कर दिया गया । आदेश की प्रति प्रदर्श पी-6 है । प्रथम प्रत्यर्थी और उसके गुंडों ने दुकान खाली करने के लिए याची को धमकाते हुए दवाब बनाना आरम्भ कर दिया । याची पुलिस के समक्ष तारीख 18 जुलाई, 2010 को शिकायत (प्रदर्श पी 7 और प्रदर्श पी 8) फाइल करने को बाध्य हुआ । किन्तु प्रथम प्रत्यर्थी के प्रभाव में आते हुए उप-निरीक्षक ने प्रथम प्रत्यर्थी का पक्ष लिया और वह भी याची को धमकाना प्रारम्भ कर दिया । इसलिए, याची ने प्रदर्श पी 9 के रूप में उप-पुलिस निरीक्षक के समक्ष उप-निरीक्षक के विरुद्ध एक अभ्यावेदन दिया । इन सबके बावज़द भी पुलिस ने उसे तंग करना जारी रखा । याची, पुलिस के तंग करने के विरुद्ध एक रिट याचिका, रिट याचिका (सिविल) सं. 36924/2010 फाइल करने के लिए बाध्य हुआ । उक्त रिट याचिका में, सरकारी प्लीडर ने यह निवेदन किया कि पुलिस हस्तक्षेप नहीं करेगी क्योंकि यह एक सिविल विवाद्यक है और तदनुसार, रिट याचिका निपटाई गई । निर्णय की प्रति प्रदर्श पी-10 है । तथापि, प्रथम प्रत्यर्थी ने मूल वाद सं. 2180/2010 में प्रदर्श पी-12 के रूप में तारीख 19 जुलाई, 2010 का एक वचनबद्ध यह फाइल किया कि वह याची को बलपूर्वक सम्पत्ति से बे-कब्जा नहीं करेगा और वह दुकान की दीवार आदि को नहीं तोड़ेगा । इसके पश्चात्, तारीख 21 अप्रैल, 2011 को प्रथम प्रत्यर्थी और उसके अनुचर दुकान परिसर में प्रवेश किए और दुकान का ताला तोड़ दिए और उसमें रखे फर्नीचर और उपकरणों को नष्ट कर दिए । कतिपय अन्य मूल्यवान वस्तुएं भी नष्ट कर दी गईं । दुकान के उत्तरी दीवार को इसके दक्षिण की ओर खोलने के लिए भागतः नष्ट कर दिया गया । याची द्वारा पुलिस के समक्ष पुनः एक शिकायत दर्ज कराई गई और प्रथम

प्रत्यर्थी के विरुद्ध तारीख 22 अप्रैल, 2011 को एक मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति प्रदर्श पी-11 है । प्रथम प्रत्यर्थी की धमकियां जारी रहीं और याची को अवैध बे-कब्जा होने की आशंका थी । इसलिए, याची रिट याचिका (सिविल) सं. 12638/2011 के अनुसार पुलिस संरक्षण के लिए इस न्यायालय के समक्ष आने के लिए बाध्य हुआ । इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका में प्रभावी पुलिस संरक्षण मंजूर करते हुए तारीख 26 अप्रैल, 2011 को एक अन्तरिम आदेश पारित किया जिससे कि याची दुकान में निर्विध्न कारबार करने में समर्थ हो सके । उसके बाद, अन्तरिम आदेश को गुणागुणों पर प्रथम प्रत्यर्थी की भी सुनवाई के पश्चात प्रदर्श पी-13 आदेश के अनुसार पूर्ण बना दिया गया । प्रथम प्रत्यर्थी ने विद्युत निगम पर प्रभाव डालते हुए दुकान की बिजली कटवाने की भी कोशिश की और इसे कुछ समय के लिए कटवा भी दिया । याची ने पूनः बिजली जोड़ने के लिए उच्चतर प्राधिकारियों के पास आवेदन किया । याची ने निगम प्राधिकारियों को विधि के अनुसरण के सिवाय उसकी बिजली नहीं काटने का निर्देश देने के लिए एक रिट याचिका सं. 2496/2011 भी फाइल की । प्रथम प्रत्यर्थी, बलपूर्वक और अवैध तौर से याची को दुकान से बेदखल करने के लिए सभी प्रयास में विफल रहने पर तारीख 6 मई, 2011 को मुंसिफ न्यायालय के समक्ष एक वाद, मूल वाद सं. 1654/2011 फाइल की । वाद-पत्र की प्रति प्रदर्श पी-1 है । वाद में यह प्रार्थना की गई कि तृतीय प्रत्यर्थी-निगम को यह निर्देश दिया जाए कि वह द्वितीय प्रत्यर्थी को निगम की अनुज्ञा के बिना दुकान में किसी प्रतिषेधात्मक वस्तुओं का कारबार करने से प्रतिषेध कर दे। द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध व्यादेश के लिए वाद में एक अन्तर्वर्ती आवेदन भी फाइल किया गया और तारीख 27 मई. 2011 को आदेश प्रदर्श पी-2 के अनुसार, एक अन्तरिम व्यादेश जारी किया गया जिसके द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी को बिना अनुज्ञप्ति के या निगम की बिना अनुज्ञा से प्रतिषेधात्मक वस्तुओं का कारबार करने से अवरुद्ध कर दिया गया । प्रदर्श पी-2 आदेश के अनुसरण में, स्वास्थ्य अधिकारी, निगम ने तारीख 1 जून, 2011 को एक आदेश प्रदर्श पी-3 जारी करते हुए 24 घंटों के भीतर दुकान बन्द करने का निर्देश दिया जिसमें असफल रहने पर याची को यह भी सूचित किया गया कि कोई अन्य सूचना दिए बिना विभाग द्वारा स्वयं दुकान बन्द कर दिया जाएगा । यद्यपि, आदेश प्रदर्श पी-3 द्वितीय प्रत्यर्थी को जारी किया गया था फिर भी, इसे याची पर तामील किया गया क्योंकि वह दुकान के कब्जे में था । याची से दुकान बन्द करने के लिए कहा गया जिसमें असफल रहने पर उसे यह भी सुचित किया गया कि दुकान स्वयं निगम द्वारा बन्द कर दिया जाएगा । याची, जो वस्तुतः दुकान में कारबार कर रहा था, आदेश प्रदर्श पी-2 और पी-3 से व्यथित और प्रभावित था । याची के अनुसार, वाद प्रदर्श पी-1 फाइल करने में ही कपट, दुर्भावना और अवैधता के कारण दूषित था । यह याची को तंग करने और उसके अधिकारों को समाप्त करने को ध्यान में रखते हुए द्वितीय प्रत्यर्थी की दुरिभसंधि में फाइल किया । अतएव, याची ने वाद-पत्र प्रदर्श पी-1 और आदेश प्रदर्श पी-2 तथा प्रदर्श पी-3 को भी अभिखंडित करने की ईप्सा की । न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दोनों पक्षकारों तथा विद्वान न्यायमित्र की सुनवाई करने के पश्चात और अभिवचनों तथा दस्तावेजों का परिशीलन करने पर, न्यायालय इस मामले के तथ्यों के आधार पर कुछ चीजें अत्यंत आश्चर्यजनक और विशिष्ट पाता है । यद्यपि, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा मुंसिफ न्यायालय के समक्ष वाद (प्रदर्श पी-1) वाद-पत्र को द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा बिना अनुज्ञप्ति आदि के कारबार करने से प्रतिषिद्ध करने के लिए निगम को निर्देश (आर-3) जारी करने हेतू फाइल किया गया था, दस्तावेजों से यह अत्यंत स्पष्ट है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने उनमें से किसी के लिए भी ऐसी कोई डिक्री कभी भी प्राप्त करने के लिए आशयित नहीं था । इसके बजाय, वस्तुतः प्रथम प्रत्यर्थी ने उस याची को निशाना बनाया जो वाद में पक्षकार भी नहीं था । प्रथम प्रत्यर्थी का मात्र आशय यह प्रतीत होता है कि वह याची की दुकान लेना चाहता था और उसके कारबार को किन्हीं या अन्य तरीकों से बन्द कराना चाहता था, जैसा कि विभिन्न दस्तावेजों से पूर्णतया स्पष्ट है । इस उद्देश्य पर पहुंचने के लिए, प्रथम प्रत्यर्थी ने चालाकी से अपना सिक्का चलाया और प्रथम कदम के रूप में उसने उस व्यक्ति के विरुद्ध वाद (आर-2) फाइल किया जिसका दुकान से कुछ भी लेना-देना नहीं था, यह कथन करते हुए कि वह दुकान के कब्जे में है । उसने प्रदर्श पी-1 में यह भी अभिवचन किया कि द्वितीय प्रत्यर्थी ने दुकान आदि में खतरनाक और जोखिमपूर्ण कारबार करने के लिए कुछ अन्य व्यक्तियों को दिया था जो उसकी जानकारी में मिथ्या था । वह पूर्णतया अच्छी तरह जानता था कि याची कई वर्षों से किराएदार के रूप में दुकान के कब्जे में था और वह स्वयं ही फोटोस्टेट आदि का कारबार कर रहा था । इस मामले में, प्रस्तुत विभिन्न दस्तावेजों से यह भी प्रकट होता है कि प्रदर्श पी-1 वाद-पत्र फाइल करने के काफी समय पूर्व, प्रथम प्रत्यर्थी और याची के बीच उसी दुकान जो प्रदर्श पी-1 की विषय-वस्तु है, के संबंध में विभिन्न मुकदमे मुंसिफ न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष भी चल रहे थे । प्रदर्श पी-5 (वाद-पत्र की प्रति) से यह प्रकट होता है कि याची और उसकी माता द्वारा वर्तमान वाद फाइल करने के लगभग एक वर्ष पूर्व प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध मूल वाद सं. 2180/2010 फाइल की गई थी, जिसके द्वारा उन्होंने प्रथम प्रत्यर्थी को दुकान की बिजली कनेक्शन काटते हुए और दुकान का उत्तरी दीवार नष्ट करते हुए उसी दुकान से उन्हें अवैध रूप से बेदखल करने से अवरुद्ध करने की मांग की थी । प्रथम प्रत्यर्थी ने मुंसिफ न्यायालय के समक्ष फाइल तारीख 19 जुलाई, 2010 के शपथपत्र प्रदर्श पी-12 में यह स्वीकार किया है कि याची दुकान के कब्जे में है । प्रदर्श पी-12 के अनुसार उसने यह भी वचनबंध किया है कि वह याची को बलपूर्वक या दुकान का उत्तरी दीवार नष्ट करके बेदखल नहीं करेगा । रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा तारीख 26 अप्रैल, 2011 का अन्तरिम आदेश पारित किया गया था, जिसके द्वारा प्रभावी पुलिस संरक्षण उपलब्ध कराने का आदेश दिया गया था, जिससे कि याची दुकान में प्रथम प्रत्यर्थी के अवैध बाधा पहुंचाए बिना कारबार करने में समर्थ हो सके । यह आदेश बाद में अन्तिम (प्रदर्श पी-13 द्वारा) भी बना दिया गया था । (पैरा 37, 38, 39 और 40)

उपर्युक्त रिट याचिका में प्रथम प्रत्यर्थी ने यह भी वचनबंध (उक्त याचिका में आदेश प्रदर्श पी-13 द्वारा) दिया था कि वह याची को दुकान के कब्जे से बेदखल नहीं करेगा । उस रिट याचिका की अन्तिम सुनवाई के अवसर पर, प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान काउंसेल द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा कोई सदोष कृत्य करने का आशय नहीं है जैसा कि याची आदि द्वारा आशंका व्यक्त की गई है । यह सभी तथ्य प्रदर्श पी-13 से प्रकट होते हैं जो याची द्वारा पुलिस संरक्षण के लिए फाइल की गई रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा दिया गया आदेश है जिसमें प्रथम प्रत्यर्थी एक पक्षकार था जिसे गुणागुणों पर सूना गया था । इस न्यायालय के आदेश प्रदर्श पी-10 द्वारा यह भी प्रकट होता है कि याची ने पुलिस द्वारा परेशान करने के विरुद्ध रिट याचिका (सिविल) सं. 36924/2010 फाइल की थी और वही दुकान उक्त रिट याचिका की भी विषय-वस्तु थी और प्रथम प्रत्यर्थी उस याचिका में भी एक पक्षकार था । प्रदर्श पी-11 से यह भी प्रकट होता है कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष यह लिखित वचनबंध फाइल करने के पश्चात भी कि वह याची को अवैध रूप से बेदखल नहीं करेगा, वह अभिकथित रूप से अवैध गतिविधियां जारी रखीं और अतएव, याची ने उसी दुकान के संबंध में, प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध आपराधिक शिकायत फाइल की थी । प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध एक आपराधिक मामला भी दर्ज किया गया और

तारीख 22 अप्रैल, 2011 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति प्रदर्श पी-11 है । मृंसिफ न्यायालय द्वारा मूल वाद सं. 2426/2010 में याची के विरुद्ध अन्तरिम व्यादेश के लिए प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल व्यादेश आवेदन में तारीख 6 सितम्बर, 2011 को पारित आदेश प्रदर्श पी-6 है । यह अविवादित है कि उस वाद की विषय-वस्तु भी वही दुकान थी । विद्वान् मुंसिफ न्यायालय ने प्रदर्श पी-6 में यह मत व्यक्त किया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा दुकान में समय-समय पर मरम्मत करने के लिए व्यक्त की गई आवश्यकता मात्र याची आदि को दुकान से बेदखल करने का प्रयास है । प्रदर्श पी-6 में यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रथम प्रत्यर्थी का दावा करने में सदभावना नहीं थी और प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध फाइल व्यादेश के लिए याचिका खर्चे सहित खारिज कर दी गई थी । उपर्युक्त इन सभी चीजों से निगम कार्यालय द्वारा जारी प्रदर्श आर 1 (ख) से यह प्रकट होता है कि वर्तमान वाद फाइल करने के पूर्व प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा निगम के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया था, यह स्निश्चित करने के लिए कि क्या उसी दुकान के संबंध में कोई अनुज्ञप्ति जारी की गई थी और निगम ने प्रथम प्रत्यर्थी को यह उत्तर दिया था कि याची को नोटिस दिया गया था जो उक्त दुकान में कारबार कर रहा था और उसने निगम को यह सूचित किया था कि उसके और दुकान के स्वामियों के बीच तीन वाद लम्बित हैं और जब तक उनका (उन तीन वादों में से दो वाद याची और प्रथम प्रत्यर्थी के बीच थे) निपटारा नहीं हो जाता है तब तक वह दुकान के स्वामियों से सहमति पत्र नहीं लेगा । प्रदर्श आर 1 (ख) से यह भी प्रकट होता है कि यह प्रथम प्रत्यर्थी को अग्रेषित था और निगम ने उसे सूचित किया कि याची दुकान आदि में अभिनाम "सिटी फोटोस्टेट" के अधीन कारबार कर रहा है । (पैरा 41, 42, 43 और 44)

प्रदर्श पी-1 के अनुसार, वर्तमान वाद फाइल करने के पूर्व प्रथम प्रत्यर्थी को प्रदर्श आर 1 (ख) जारी किया गया था । प्रदर्श आर 1 (ख) तारीख 26 अप्रैल, 2011 का है जबिक प्रदर्श पी-1 वाद-पत्र तारीख 6 मई, 2011 को फाइल किया गया है जो प्रदर्श आर 1 (ख) जारी होने के लगभग 10 दिनों पश्चात् का है । प्रदर्श पी-6 से पी 9 और पी-11 से यह प्रकट होता है कि उसी दुकान के संबंध में याची और प्रथम प्रत्यर्थी के बीच पुलिस के समक्ष अन्य कार्यवाहियां भी चल रही थीं । स्वीकृततः, याची द्वारा प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाहियां भी आरम्भ की गई थीं, इस अभिकथन पर कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा दुकान की विद्युत आपूर्ति काटने का प्रयास किया गया था वर्तमान वाद में, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल शपथपत्र प्रदर्श आर 1 (क) से भी

यह स्पष्ट होता है कि वह यह भी जानता था कि उसी दुकान के संबंध में याची और प्रथम प्रत्यर्थी के हितपूर्वाधिकारी के बीच एक वाद चल रहा था और याची का दुकान के ऊपर किराएदार के रूप में अधिकार सिविल न्यायालय के समक्ष पूर्णतया सिद्ध हो गया था । इस प्रकार, विभिन्न मुकदमों और अन्य कार्यवाहियों को देखते हुए, प्रथम प्रत्यर्थी स्वयं ही वर्तमान वाद फाइल करने के पूर्व इस बात को पूर्णरूपेण जानता था कि याची स्वयं ही दुकान के अधिभोग में है और वह किराएदार के रूप में काफी लम्बे समय से दुकान में कारबार कर रहा है । प्रथम प्रत्यर्थी यह भी जानता था कि द्वितीय प्रत्यर्थी का दुकान में कारबार करने से कोई लेना-देना नहीं था । इन सभी के बावजूद, वर्तमान वाद फाइल करते समय, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा प्रदर्श पी-1 वाद-पत्र में यह कथन किया गया है कि द्वितीय प्रत्यर्थी दुकान का प्रयोग करता है और अन्य व्यक्तियों को सप्ताहवार आधार पर दुकान में प्रतिषिद्ध और खतरनाक वस्तुओं का कारबार करने के लिए पटटे पर दिया है । उसने वाद-पत्र में किराएदार के रूप में दुकान पर याची के कब्जे के बारे में कोई भी बात नहीं की है । इन सभी सूसंगत तथ्यों को छिपाया गया है और उसने प्रदर्श पी-1 वाद-पत्र और प्रदर्श आर 1 (क) शपथपत्र में कतिपय तथ्यों का कथन किया है जो उसकी स्वयं की जानकारी में सभी मिथ्या हैं । मिथ्या अभिवचनों के आधार पर प्रथम प्रत्यर्थी ने मृंसिफ न्यायालय से द्वितीय प्रत्यर्थी को दुकान आदि में कारबार करने से अवरुद्ध करते हुए प्रदर्श पी-2 व्यादेश भी प्राप्त कर लिया था । यद्यपि, उक्त आदेश द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध प्राप्त किया गया था फिर भी यह याची के विरुद्ध दुरुपयोग करने के लिए आशयित था । प्रदर्श पी-2 आदेश प्राप्त करने के पश्चात निगम से भी दुकान बन्द करने का निर्देश देते हुए, प्रदर्श पी-3 आदेश जारी करवा लिया । यद्यपि, प्रदर्श पी-3 द्वितीय प्रत्यर्थी के प्रति अग्रेषित था फिर भी इसे याची पर तामील किया गया जो वस्तृतः दुकान में कारबार कर रहा था । निगम के विद्वान काउंसेल श्री वी. एम. श्यामकुमार ने ऋजुतः यह स्वीकार किया है कि प्रदर्श पी-2 आदेश के अनुसरण में ही निगम ने दुकान में कारबार बन्द करने के लिए प्रदर्श पी-3 आदेश पारित किया था और यद्यपि आदेश द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध जारी किया गया था फिर भी इसे याची पर तामील किया गया क्योंकि वह वस्तुतः दुकान के कब्जे में था । याची को भी दुकान बन्द करने का निर्देश दिया गया था । यह सभी तथ्य निगम द्वारा फाइल प्रति-शपथपत्र से भी प्रकट होते हैं । इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि यद्यपि प्रदर्श पी-2 और पी-3 आदेशों को प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध प्राप्त किए गए थे फिर भी वे याची को तंग करने हेतू दुरुपयोग करने के लिए

आशयित थे । यह भी स्पष्ट है कि उन आदेशों को यह सुनिश्चित करने के लिए प्राप्त किया गया था कि याची की दुकान और उसके द्वारा लम्बे समय से किए गए कारबार को बंद करा दिया जाए । प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा प्रदर्श पी-2 और पी-3 आदेशों को प्राप्त करने के लिए अपनाए गए साधन और तरीके अत्यन्त अवांछनीय थे और उन्हें किसी भी न्यायालय द्वारा अनुमोदित नहीं किया जा सकता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह तर्क उदभूत किया गया है कि प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 आदेश द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध पारित किए गए हैं न कि याची के विरुद्ध और अतएव याची को सुने जाने आदि का अधिकार नहीं है । एक व्यक्ति जो उन तथ्यों के अभिवचनों के आधार पर जो उसकी स्वयं की जानकारी में मिथ्या हैं, के आधार पर न्यायालय से एक आदेश प्राप्त कर लेता है, उस व्यक्ति को शामिल किए बिना जिसके विरुद्ध आदेश का दुरुपयोग करने का एकमात्र आशय के साथ कार्यवाहियों में वस्तृतः लक्षित किया गया है तो पूर्ववर्ती की यह कहते हुए सुनवाई नहीं की जाएगी कि बाद वाले को ऐसे आदेश को चुनौती देते हुए सुने जाने का कोई आधार नहीं है, मात्र इस आधार पर कि आदेश अन्य व्यक्ति के विरुद्ध पारित किया गया है न कि उस लक्षित व्यक्ति के विरुद्ध पारित किया गया है । यदि न्यायालय का यह समाधान है कि किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति को अपहानि पहुंचाने के लिए प्रवंचनापूर्ण उपायों से एक आदेश प्राप्त कर लिया है तो इससे स्वतः ही असम्यक अपहानि हो सकती है । इसलिए, सुने जाने आदि के अधिकार का प्रश्न इस प्रकार के मामलों में अत्यधिक स्संगत नहीं होते हैं । न्यायालय द्वारा किसी भी कीमत पर, किसी व्यक्ति को अपनी स्वयं की बेईमानी का असम्यक लाभ उठाने और यह दलील देने की कि अन्य पक्षकार जिसे उसके द्वारा अवैध तौर पर अपहानि कारित की गई है, को सुने जाने का अधिकार नहीं है, की अनुज्ञा नहीं दी जाएगी । उसे उस अन्य व्यक्ति को खतरे में डालने के लिए न्यायालय से निवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है, जो न्याय के लिए न्यायालय में आता है । अतएव, यह तर्क कि याची को सूने जाने का अधिकार नहीं है और यह कि उसे कपट आदि सिद्ध करने के लिए सिविल न्यायालय में जाना चाहिए, मात्र नामंजुर ही किया जा सकता है। दुसरी ओर, में इस तर्क में विचारणीय बल पाता हं कि प्रथम प्रत्यर्थी ने प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 आदेशों को बेईमानीपूर्वक प्राप्त करने के लिए कृटिल और घृणित कदमों का सहारा लिया जिसका एकमात्र आशय याची के विरुद्ध उसकी दुकान बंद कराने के लिए दुरुपयोग करना था । इसलिए, मैं सुने जाने आदि के आधार पर इस याचिका को खारिज नहीं कर सकता हं । (पैरा 45, 46,

47, 48, 49, 50, 51 और 52)

इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि प्रदर्श पी-2 आदेश पारित नहीं किया जाता यदि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा व्यादेश के लिए शपथपत्र/आवेदन प्रदर्श पी-1 या प्रदर्श आर 1(क) में सही तथ्यों का वर्णन किया होता । यदि विद्वान मृंसिफ न्यायालय मुकदमे के इतिहास को जान गए होते तो उनके द्वारा कभी भी प्रदर्श पी-2 एकपक्षीय व्यादेश पारित नहीं किया जाता । यदि विद्वान मृंसिफ न्यायालय यह जानते होते कि इस न्यायालय ने याची को उसी दुकान में कारबार करने के लिए प्रभावी पुलिस संरक्षण मंजूर किया है (अन्तरिम आदेश द्वारा, जैसा कि आदेश प्रदर्श पी-13 में उद्भृत है) तो यह असंभाव्य होता कि याची की स्नवाई किए बिना उसी दुकान में कारबार करने के संबंध में प्रदर्श पी-2 आदेश पारित किया जाता । यदि प्रदर्श पी-2 जैसे आदेश पारित नहीं किए गए होते तो प्रथम प्रत्यर्थी इस प्रास्थिति में नहीं होता कि वह निगम से प्रदर्श पी-3 आदेश पारित करवा लेता और उसे याची पर तामील करवा लेता जिससे बाद में हानि कारित हुई । यदि प्रदर्श पी-1 वाद-पत्र और प्रदर्श आर 1(क) के प्रकथन जो प्रथम प्रत्यर्थी की जानकारी में मिथ्या थे काल्पनिक रूप से प्रभावित नहीं होते तो इससे विकृत वाद-पत्र बनता जिसके आधार पर किसी न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित नहीं कर सकता था । वाद डिक्री करने के लिए अथवा न ही प्रदर्श पी-2 जैसे व्यादेश प्राप्त करने के लिए कोई वाद-हेतुक बचता । इन परिस्थितियों में, याची (जिसके विरुद्ध प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा बेईमानीपूर्वक आदेश प्राप्त कर लिए गए हैं) से यह कहना अनुचित और अऋजु होगा कि वह कार्रवाई स्वयं को अभिवाचित करते हुए और अपना मामला लड़ने के लिए विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण करें । न्यायालय द्वारा इस प्रकार के मामलों में अपनाई गई ऐसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उस पक्षकार के साथ घोर अन्याय होगा जो पहले से ही काल्पनिक मुकदमे द्वारा पीड़ित है जिसके साथ अपने द्वेषपूर्ण उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए न्यायालय के प्राधिकार का दुरुपयोग किया गया है । विधि का शासन और विधि की प्रक्रिया का अभिप्राय न्याय करना है न कि उनके द्वारा किसी व्यक्ति के साथ अन्याय करना है । अतएव, यह तत्काल ही न्यायालय के नोटिस में लाया जाता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को तंग या परेशान करने के एकमात्र आशय से वाद-पत्र या शपथपत्र में मिथ्या प्रकथनों द्वारा न्यायालय से कोई आदेश प्राप्त कर लेता है और न्यायालय ऐसा करने में अपने उपकरणों का उपयोग करता है तो न्यायालय इसे पुनः खोल सकता है और की गई अपहानि में कोई विलम्ब किए बिना सम्पूर्ण मामले की

परीक्षा कर सकेगा । मेरे विवेक में यह भी लाया गया है कि कोई कार्यवाही जो अन्तरस्थ हेत् से आरम्भ की गई है, वह साधारणतया सभी आवश्यक अभिवचनों द्वारा समर्थित होगा । वस्तुतः, ऐसा संक्षेप यह सुनिश्चित करने के लिए सही रूप से बेहतर प्ररूप होगा कि इससे उद्देश्य भ्रमित नहीं हो । इसलिए, ऐसे मामलों में, न्यायालय के लिए यह कार्य आसान नहीं होता है कि वह प्रारम्भ में ही, बुरे हेतुक मुकदमों की शनाख्त कर सके, विनिर्दिष्टया यदि विरोधी पक्षकार परिदृश्य से बाहर रहते हुए जानबूझकर निशाना लगाता है । इसलिए, यह संभाव्य है कि ऐसे वाद में पारित आदेश प्रकटतः अन्यायोचित नहीं हो सकता है । ऐसा इसलिए भी, यदि कोई व्यक्ति उस वादी के विरुद्ध प्रतिवादी के रूप में अभिवाचित है जिसका आशय डिक्री या आदेश प्राप्त करना नहीं है अपितृ किसी अन्य व्यक्ति को तंग करने के लिए दुर्भावनापूर्ण आशय से अभिवाचित करना है तो ऐसे प्रतिवादी का नाम भी कार्यवाहियों से तत्काल समाप्त कर दिया जाएगा । यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष होता है कि किसी व्यक्ति को एक पक्षकार के रूप में उसके विरुद्ध तैयार करना है जिसके विरुद्ध कोई डिक्री या आदेश प्राप्त करने की ईप्सा की गई है तो यह कहने में कोई तर्क या कारण नहीं हो सकता है कि न्यायालय को कार्यवाही जारी रखनी चाहिए । न्यायालय को कार्यवाहियां बंद कर देना चाहिए बजाय इसके कि फाइल पर वाद लाने के, क्योंकि इससे बेईमान मुकदमेबाज एक अन्य व्यक्ति को अभिवाचित करने और वाद-पत्र में उपयुक्त तरीके से वाद-पत्र में संशोधन कराने में सफल हो जाएगा । ऐसी कोई विधि या प्राधिकार नहीं है जिसमें न्यायालय ऐसे अऋजू या अन्यायोचित कार्यों को मान्यता दे यद्यपि तकनीकी रूप से प्रक्रियात्मक विधि इन सभी चीजों को संभाव्य बना सकती है । अतएव, न्यायालय के सुविचारित मत में, न्यायालय उस मुकदमेबाज (जिसने अन्य व्यक्ति को अपहानि पहुंचाने के लिए प्रवंचनापूर्ण तरीके द्वारा न्यायालय से आदेश प्राप्त कर लिया है) जिसने फाइल पर संक्षिप्त अभिवचन किया है, का सम्मान नहीं करेगा । न्यायालय के अनुसार, एक मुकदमेबाज की बेईमानी जो एक अन्य व्यक्ति को अपहानि पहुंचाने के अपने बुरे उद्देश्य पर पहुंचने के लिए न्यायालय को एक साधन के रूप में इस्तेमाल करता है, को सभी संभाव्य तरीके से हतोत्साहित और निन्दित किया जाना चाहिए । किसी को भी न्यायालय के प्राधिकार का दुरुपयोग करना मंजूर नहीं करना चाहिए । न्यायालय को यह रमरण रखना चाहिए कि बेईमानीपूर्वक साधनों द्वारा प्राप्त किसी आदेश से न्यायपालिक की ही प्रतिष्ठा नष्ट हो सकती है और लोगों का न्याय प्रशासन की व्यवस्था से विश्वास उठ सकता है । पक्षकार की धूर्तता को, जो ठोस आधारों और

दुर्भावनापूर्ण आशय से न्यायालय में आता है, न्यायालय की मौनानुकूलता द्वारा पुरस्कृत नहीं किया जाएगा । न्यायालय को सुदृढता और प्रबलतापूर्वक कथन करना चाहिए और इस संस्था के विश्वास को लोगों में बनाए रखने के लिए सकारात्मक रूप से भी कार्य करना चाहिए । यह दुखदायी और अत्यन्त घृणित है कि कतिपय लोग अपने घृणित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए न्यायालय को एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल करते हैं । समय-समय पर न्यायालय की प्रक्रिया का अत्यधिक दुरुपयोग किया गया है अथवा अधिकारों का उपयोग करने के मुकाबले इनका दुरुपयोग किया गया है । न्यायालयों को ऐसी प्रवृत्ति को बढ़ावा देना मंजूर नहीं किया जाना चाहिए । यह तभी अवरुद्ध या समाप्त होगा जब यह इस प्रकार विकसित हो जाएगा कि न्याय ऐसे मुकदमेबाजों के हाथों आहत नहीं होगा । न्यायालय को इन सभी को समाप्त करने के लिए स्वयं कोई रास्ता ढूंढना चाहिए, कार्यवाहियां जो किसी अन्य व्यक्ति को अपहानि पहुंचाने के एकमात्र हेत् से आरम्भ की जाती हैं, उस व्यक्ति द्वारा अपेक्षित परिणाम पर पहुंचने के लिए न्यायालय को एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया जाता है । (पैरा 53, 54, 55, 56, 58, 59, 60 और 61)

किन्तू, इसके बाद यह प्रश्न कि क्या न्यायालय को सिविल वाद समाप्त करने की शक्ति है, इसके लिए उपबंध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 में भी है । इस प्रकार, इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि इस न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष लम्बित किसी कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करने के लिए संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 और 226 के अधीन पर्याप्त शक्तियां हैं यदि ऐसा हस्तक्षेप करने के लिए समृचित न्यायिक आधार है । किन्तू, इस प्रकार की शक्ति विवेकीय होने के नाते इसका प्रयोग मात्र तभी किया जाएगा यदि न्यायिक संचेतना और व्यवहारिक ज्ञान न्यायालय को न्याय करने और घोर अन्याय को रोकने के लिए ऐसा आदेश देते हैं । किन्तू, इनका प्रयोग सभी परिस्थितियों में नहीं किया जाएगा । प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने उपर्युक्त युक्ति का समर्थन करते हुए मजबूती से यह तर्क दिया कि प्रदर्श पी-2 आदेश जारी करने में अधिकारिता संबंधी कोई त्रुटि या आधिक्य नहीं हुआ है और अतएव, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 का अवलंब नहीं लिया जा सकता है । तथ्यों पर विचार करते हुए, न्यायालय द्वारा इसका उत्तर दिया जाएगा । जैसा कि न्यायालय द्वारा पहले ही इंगित किया जा चुका है, यह प्रकट है कि प्रदर्श पी-1 वाद-पत्र को उपयुक्त छिपाव तथा निगमित कतिपय

अभिवचनों द्वारा प्ररूपित किया गया था जो स्वयं ही प्रथम प्रत्यर्थी की जानकारी में सत्य नहीं था । यह अपनी सुविधा के लिए न्यायालय से आदेश प्राप्त करने के लिए किया गया था ताकि वह याची के विरुद्ध उसका दुरुपयोग कर सके । इसलिए, अभिवचनों का परिशीलन करने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालय ने अधिकारिता संबंधी कोई त्रृटि या आधिक्य में कार्य किया है । इसे भी विवादित नहीं किया जा सकता कि वाद-पत्र को चालाकी और बेईमानीपूर्ण तरीके से प्ररूपित किया गया है जिससे उस व्यक्ति के लिए यह कठिन नहीं हो सकता कि वह अधिकारिता संबंधी त्रुटि का लाभ लेते हुए न्यायालय से कोई आदेश आसानी से प्राप्त कर सके । प्ररूप की संगणना करने पर फाइल वाद में मिथ्या वाद हेतूक सृजित करना संभाव्य हो सकता है और एक एकपक्षीय आदेश प्राप्त किया जा सकता है जो अधिकारिता के किसी त्रृटि या आधिक्य से दूषित नहीं हो सकता है । प्रवंचनापूर्ण तरीके से एक वाद द्वारा ऐसा आदेश आसानी से प्राप्त किया जा सकता है जो अभिवचनों के आधार पर न्यायोचित हो सकता है । इसलिए, मात्र इस कारण से कि अधिकारिता संबंधी त्रूटि या आधिक्य में नहीं है जो रिष्टिपूर्ण प्ररूप की कोटि में आता है, यह न्यायालय संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन शक्ति का अवलंब लेने या इनकार करने में नहीं हिचिकचाएगा । भारत का संविधान, न्यायालयों से अति उच्च नैतिक भूमिका की उम्मीद करता है। यदि न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि ऐसा वाद फाइल करते हुए कार्यवाहियां आरम्भ की गईं हैं, जो मिथ्या वर्णन के साथ कटपपूर्ण है जो स्वयं वादी की जानकारी में मिथ्या है और यदि न्यायालय का यह समाधान है कि ऐसी कार्यवाहियां जारी रखने के परिणामस्वरूप घोर अन्याय होगा अथवा न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा तो न्यायालय ऐसी कार्यवाहियों को समाप्त कर सकता है । एक मिथ्या वाद को विकसित या जीवित रखने के लिए इसकी जहरीली जड़ों में न्यायालय द्वारा खाद या पानी नहीं डाला जाएगा । संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन शक्तियों का अवलंब न्याय कायम रखने और अन्याय का उन्मूलन करने के लिए ऐसे वाद को न्यायालय की फाइल से यथाशीघ्र अभिखंडित करने के लिए लिया जाना चाहिए । न्यायालय का समय मूल्यवान होता है और इसे उस व्यक्ति के लिए बचाकर रखना होता है जो न्यायालय में ईमानदारी से आता है । इसका समय परिरक्षित किया जाएगा और उस ईमानदार मुकदमेबाज के लिए उपयोग किया जाएगा जो न्यायालय से न्याय के योग्य होगा । एक पक्षकार जो ऐसे अन्तर्निहित अभिवचनों के वाद-पत्र के साथ आता है जो उसकी स्वयं की जानकारी में मिथ्या होता है वह न्यायालय

की प्रक्रिया का दुरुपयोग करता है । न्यायालय को ऐसे व्यक्ति को बाहर का दरवाजा दिखा देना चाहिए । उसका वाद-पत्र अवश्य ही अभिखंडित कर दिया जाना चाहिए क्योंकि वह किसी भी प्रकार से वादपत्र नहीं होता है यदि मिथ्या अभिवचनों से इसे समाप्त किया जा सकता है । संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 की शक्ति का प्रयोग ऐसी प्रकृति के वादपत्रों को अभिखंडित करने के लिए किया जा सकता है और अवश्य ही किया जाना चाहिए । सिविल प्रक्रिया संहिता. 1908 की धारा 151 में यह अधिकथित है कि इस संहिता की किसी भी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह ऐसे आदेशों के देने की न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति को परिसीमित या अन्यथा प्रभावित करती है, जो न्याय के उद्देश्यों के लिए या न्यायालय की आदेशिका के दुरुपयोग का निवारण करने के लिए आवश्यक है । यह सुस्थिर और स्ज्ञात है कि दुर्भावनापूर्ण आशय से आरम्भ की गई दांडिक कार्यवाहियों को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का अवलंब लेते हुए अभिखंडित की जाती हैं, यद्यपि चालाकीपूर्ण प्ररूप से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट द्वारा अपराध को प्रकट किया जाता है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 भी उन्हीं प्रयोजनों के लिए संविधि में लाया गया है। न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का अवलंब न्याय उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए लिया जाता है और ऐसी शक्ति प्रत्येक न्यायालय में अन्तर्निहित होती हैं । ऐसी शक्ति को न्याय के उद्देश्य आदि प्राप्त करने के लिए संविधि द्वारा स्निश्चित ही नहीं की गई है अपित् ऐसी शक्तियों की कोई परिसीमा भी अधिकथित नहीं की गई है । स्स्थिर सिद्धांतों के अनुसार, यद्यपि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट जो प्रथमदृष्ट्या एक अपराध प्रकट करता है, को धारा 482 के अधीन अभिखंडित नहीं किया जाएगा, यदि न्यायालय का यह समाधान होता है कि कार्यवाहियां अन्तरस्थ हेत् या दुर्भावनापूर्ण रूप से संस्थित की गई हैं तो न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित कर सकता है । यह स्पष्टतः उपदर्शित करता है कि न्यायालयों को दुर्भावनापूर्ण मुकदमे को संज्ञान में लेना चाहिए और कार्यवाहियों के आरम्भ में ही उस पर तत्परता से कार्यवाही करनी चाहिए । इसलिए, न्यायालय यह नहीं समझता है कि क्यों न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का अवलंब लेते हुए दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए सिविल और दांडिक कार्यवाहियों के बीच विभेद किया जाना चाहिए यदि न्यायालय कार्यवाहियों को जारी रखना न्यायालय के दुरुपयोग की कोटि में पाता है और यह मिथ्या प्रकथनों और अभिकथनों के आधार पर संस्थित की

गई है । यदि न्यायालय का यह समाधान होता है कि वाद दुर्भावनापूर्ण आशय और वाद-पत्र में निगमित अभिवचनों द्वारा अन्तरस्थ हेत् से फाइल किया गया है जो स्वयं वादी की जानकारी में मिथ्या है तो न्याय की यह मांग होती है कि ऐसे वाद को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन अन्तर्निहित शक्ति का अवलंब लेते हुए अभिखंडित कर दिया जाए । यदि न्यायपालिका का विश्वास और विश्वसनीयता को बनाए रखना है तो व्यक्ति, जो न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करता है, उसकी न्यायालयों द्वारा शनाख्त की जानी चाहिए और समुचित मामलों में विधि के मजबूत हाथों द्वारा उनके बुरे प्रयासों का अंत कर दिया जाना चाहिए । यदि अभी भी ऐसा कोई प्रश्न बना हुआ है कि क्या ऐसी सिविल कार्यवाहियों को समाप्त करने के लिए न्यायालय की कोई शक्ति है जो अन्तरस्थ हेतू से वाद फाइल करते हुए आरम्भ की गई है तो मेरे अनुसार ऐसा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 द्वारा भी किया जा सकता है । इस निर्णय के पहले ही मैंने कतिपय विनिश्चयों को उद्धत किया है जो संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के साथ ही अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति को निर्दिष्ट करता है । यदि माननीय उच्चतम न्यायालय की राय में, दुर्भावना के साथ आरम्भ की गई दांडिक कार्यवाहियां न्यायालय में जारी रखना मंजूर नहीं की जा सकेगी और वे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन अभिखंडित की जा सकती हैं तो यह समान रूप से सिविल कार्यवाही में भी लाग होनी चाहिए क्योंकि ऐसी दोनों ही कार्यवाहियां यदि दुर्भावनापूर्ण और मिथ्यापूर्ण तरीके से आरम्भ की जाती हैं तो वे इस देश के नागरिकों के अधिकारों और दायित्वों को प्रतिकृल रूप से प्रभावित कर सकती हैं और उनके परिणामस्वरूप उनके साथ घोर अन्याय भी हो सकता है । न्यायालय द्वारा सिविल कार्यवाही या संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सांविधानिक शक्तियों का अवलंब लेते हुए फाइल की गई वाद में बिना किसी तर्क या कारण के विभेद नहीं किया जाएगा । इस बारे में कोई भी संदेह नहीं हो सकता है कि उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायिक न्यायालय संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट अधिकारिता के अध्यधीन हैं । वे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट अधिकारिता के भी अध्यधीन हो सकते हैं । उपर्युक्त सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि इस न्यायालय के समक्ष दुर्भावनापूर्ण या अन्तस्थ हेत् के साथ आरम्भ की गई सिविल कार्यवाहियों को समाप्त करने में इस न्यायालय द्वारा कोई गलती नहीं की गई है, जिसका जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा । इस मत को अपनाने के लिए न्यायालय को कोई अफसोस

या पछतावा नहीं है कि इससे उच्च न्यायालय के समक्ष मुकदमों की बाढ़ सी आ जाएगी । न्यायालयों का अस्तित्व बिना किसी आधारहीन आशंका या डर के न्याय कायम रखने के लिए होता है । इसलिए, न्याय के उद्देश्य को स्निश्चित करने और घोर अन्याय का उन्मूलन करने के लिए इस न्यायालय को संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226, अनुच्छेद 227 अथवा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन ऐसे वाद को अभिखंडित करने की शक्ति है जिसमें ऐसे अभिवचन अन्तर्विष्ट हैं जो स्वयं वादी की जानकारी में मिथ्या हैं और बिना इसके वादपत्र किसी भी प्रकार से वादपत्र नहीं होता है । एक व्यक्ति जो उस एक अन्य व्यक्ति के हाथों ग्रसित होता है जिसने मिथ्या वाद फाइल किया है तो उसे सिविल न्यायालय में जाने के लिए वापस नहीं भेजा जा सकता है यह कथन करते हुए कि उसे विधि के अधीन एक अन्य उपचार उपलब्ध है । यह हो सकता है कि उसके पास एक अन्य उपचार हो, किन्तु यह उस प्रकार प्रभावी नहीं हो सकता है जैसा कि बुरे हेत्क और मिथ्या वादपत्र को अभिखंडित करने का उपचार है जो अन्तरस्थ हेतू से फाइल की गई है । यह प्रश्न नहीं है कि क्या एक पक्षकार को कोई अन्य उपचार उपलब्ध है किन्तु वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या उपचार, यदि कोई हो प्रभावी रूप से उपलब्ध है जिसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के अधीन मंजूर किया जा सकता है । इस मामले के तथ्यों के आधार पर मेरा यह समाधान है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने ऐसे कई अन्तर्विष्ट तथ्यों में प्रदर्श पी-1 वादपत्र फाइल किया है जो उसकी जानकारी में मिथ्या हैं । यदि ऐसे तथ्यों को वादपत्र से काल्पनिक रूप से निकाल दिया जाए तो कोई भी अनुतोष मंजूर करने के लिए वादपत्र में कुछ नहीं बचेगा । इसलिए, यदि द्वितीय प्रत्यर्थी का नाम जुड़े हुए पक्षकार से काल्पनिक रूप से निकाल दिया जाता है तो कोई भी आदेश जैसे प्रदर्श पी-2 आदेश पारित नहीं किया जा सकेगा । प्रदर्श पी-3 आदेश को प्रदर्श पी-2 आदेश के अनुसरण में पारित किया गया है । इन परिस्थितियों में, प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 आदेशों को इस निर्णय में अधिकथित सिद्धांतों के प्रकाश में, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226, अनुच्छेद 227 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन अभिखंडित किया जाता है । इस संदर्भ में, प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान काउंसेल ने यह निवेदन किया कि याची को इन कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान वाद में अभिवाचित किया गया है और अतएव, याची को अपने उपचार हेत् विचारण न्यायालय के समक्ष जाने के लिए निर्देश दिया जा सकता है । यदि न्यायालय द्वारा ऐसा अनुक्रम अपनाया जाता है तो यह याची को परेशान करने के लिए एक अन्य अवसर देते हुए प्रथम प्रत्यर्थी को पुरस्कृत करना होगा, जो पहले से ही न्याय पाने के लिए दर-दर भटकते हुए प्रथम प्रत्यर्थी के मजबूत हाथों से ग्रसित है । न्यायालय मामले पर पुनः विचार नहीं करता है और न्यायालय के अनुसार, मात्र प्रभावी उपचार यह है कि प्रदर्श पी-1 के आधार पर आरम्भ की गई सभी कार्यवाहियां अभिखंडित कर दी जाएं । (पैरा 62, 66, 67, 68, 69, 70, 71, 74, 76, 77, 78, 80, 81, 83, 84, 85, 86 और 87)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैर
[2011]	(2011) 2 एस. सी. सी. 772 : टी. जी. एन. कुमार बनाम केरल राज्य और अन्य ;	27
[2011]	(2011) 2 एस. सी. सी. 782 : कन्हैयालाल लालचन्द सचदेव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य ;	27
[2011]	2011 (2) के. एल. टी. 1022 : मनोज बनाम गुरवायूर देवासओम ;	28
[2010]	(2010) 9 एस. सी. सी. 385 : जय सिंह और अन्य बनाम नगर निगम, दिल्ली और एक अन्य ;	26,27
[2010]	(2010) 8 एस. सी. सी. 329 : शालिनी श्याम शेट्टी और एक अन्य बनाम राजेन्द्र शंकर पाटिल ;	26,27
[2010]	2010 (8) के. एल. टी. 676 : सली और अन्य बनाम संतोष ;	27
[2010]	(2010) 12 एस. सी. सी. 70 : सत्यपाल सिंह बनाम भारत संघ ;	88
[2009]	(2009) 5 एस. सी. सी. 616 : राधे श्याम और एक अन्य बनाम छबीनाथ और अन्य ;	26,27
[2009]	(2009) 15 एस. सी. सी. 444 : पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम समर कमार सरकार :	67

[2008]	(2008) 12 एस. सी. सी. 267 : उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य बनाम प्रमोद कुमार शुक्ला और एक अन्य ;	21
[2008]	(2008) 14 एस. सी. सी. 58 : रमेश चन्द्र संकल बनाम विक्रम सीमेन्ट ;	62
[2008]	(2008) 14 एस. सी. सी. 1 : रुकमणि नारवेकरु बनाम विजय सतरदेकर ;	80
[2008]	2008 के. एच. सी. 6970 = 2008 (15) एस. सी. ए. एल. ई. 60 : इच्चर ट्रैक्टर लिमिटेड बनाम हरिहर सिंह ;	79
[2007]	(2007) 6 एस. सी. सी. 750 : इला विपिन पांड्या (2) बनाम समिता अम्बालाल पटेल ;	88
[2006]	(2006) 3 एस. सी. सी. 658 : मुसरफ हुसैन खान बनाम भागीरथ इंजीनियरिंग लि. ;	82
[2003]	(2003) 6 एस. सी. सी. 641 : राज्य बनाम नवजोत संधू ;	62
[2003]	(2003) 6 एस. सी. सी. 675 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3044 : सूर्य देव राय बनाम राम चन्दर राय और अन्य ; 26,65	5,82
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 289 : रविन्दर कौर बनाम अशोक कुमार ;	36
[2002]	2002 (1) के. एल. टी. एस. एन. 112 : महासचिव, के. टी. डी. सी. वर्कर्स एसोशिएशन बनाम श्रम न्यायालय ;	27
[2002]	(2002) 1 एस. सी. सी. 100 : रोशन दीन बनाम प्रीति लाल ;	63
[1998]	1998 (2) के. एल. जे. 879 : रानीपेट नगरपालिका बनाम शमशीर खान ;	31

[1997]	1997 (2) एल. डब्ल्यू. 761 : रानीपेट नगरपालिका बनाम एम. शमशीर खान ;	36,72
[1997]	(1997) 7 एस. सी. सी. 91 : अमिताभ बच्चन कारपोरेशन लिमिटेड बनाम महिला जागरण मंच ;	89
[1996]	1996 ला वीकली 559 (मद्रास) : श्री राम चन्दरन बनाम कृष्ण राज ;	34
[1992]	1992 एस. सी. 1790 : कृष्ण कुमार बनाम राजस्थान राज्य ;	27
[1992]	1992 (2) एम. एल. जे. 277 : माडरेटर चर्च आफ साउथ इंडिया सी. एस. आई. सेन्टर चेन्नई बनाम जे. एस. किंग्सले ;	36
[1992]	ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 604 : भजन लाल बनाम हरियाणा राज्य ;	75
[1988]	1988 (2) के. एल. टी. 732 : श्रीधरन बनाम शीतला ;	33,73
[1984]	ए. आई. आर. 1984 गुजरात 10 : भूपति लाल बनाम भानूमति ;	34
[1977]	(1977) 4 एस. सी. सी. 467 : टी. अरिवन्दनम बनाम टी. वी. सत्यपाल और एक अन्य ;	78
[1968]	1968 के. एल. टी. 60 : नल्लाकोया बनाम प्रशासक, लक्षद्वीप संघ राज्य क्षेत्र और अन्य ;	21
[1967]	ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1 : नरेश बनाम महाराष्ट्र राज्य ;	21
[1951]	ए. आई. आर. 1951 कलकत्ता 563 : महादेव जीव बनाम बी. बी. सेन ;	36

1913 (35) आई. एल. आर. (इला.) 337 : [1913] बुजराज सिंह और एक अन्य बनाम शियोधन सिंह और अन्य ।

33

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 2011 की मूल याचिका (सिविल) सं. 1792.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से

श्री जीजो पाल

प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से

सर्वश्री के. राम कुमार ज्येष्ठ अधिवक्ता, टी. राम प्रसाद उन्नी तथा (सुश्री) आर. पद्म कुमारी

और (सुश्री) स्मिथ जार्ज

प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से

सर्वश्री के. पी. विजयन, वी. एम. श्याम कुमार, वी. एन. हरिदास और श्रीमती कृपा एलिजाबेथ मैथ्यूज

न्याय मित्र

श्री एन. सुब्रमणियम्

न्यायमूर्ति (श्रीमती) के. हेमा – क्या एक वादपत्र, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन अभिखंडित किया जा सकता है ? यह महत्वपूर्ण प्रश्न, इस याचिका में विचार के लिए उद्भूत हुआ है।

- 2. यह याचिका मुख्यतः निम्नलिखित प्रकथनों पर फाइल की गई है : -याची के पिता ने द्वितीय प्रत्यर्थी के पिता से पटटे पर एक दुकान ली थी । मूल मकान-मालिक और किराएदार दोनों की मृत्यु हो गई । याची, उसके भाई और माता किराएदार के रूप में निरन्तर बने रहे और वे "सिटी फोटोस्टेट" के अभिनाम से दुकान में फोटोस्टेट, टेलीफोन बूथ, फैक्स, लेमिनेशन आदि का कारबार करते रहे । पूर्व में वर्ष 1986 तक दूकान में कपड़े का कारबार होता रहा था । याची दुकान के लिए वृत्तिक कर और बिजली बिल का संदाय करता रहा । उसके कर्मचारी भी श्रम विभाग में रजिस्ट्रीकृत हैं ।
- 3. मूल मकान-मालिक की मृत्यु के पश्चात्, उसके बच्चों (उनमें से एक द्वितीय प्रत्यर्थी है) ने दुकान में अतिचार करने की कोशिश की और तारीख 16 अक्तूबर, 2008 को याची और उसकी माता द्वारा दुकान से बलपूर्वक बेदखली रोकने के लिए मूल वाद सं. 2881/2006 फाइल की गई । वाद, तारीख 16 अक्तूबर, 2008 को डिक्री कर दी गई और व्यादेश

मंजूर कर लिया गया । निर्णय की प्रति प्रदर्श पी-4 है ।

- 4. लगभग 2 वर्ष पश्चात् वर्ष 2010 में प्रथम प्रत्यर्थी ने दुकान में अतिचार करने की कोशिश की और दुकान की दीवारों को नष्ट कर दिया और दुकान में चल रहे कारबार में बाधा पहुंचाई, इस दावे पर कि उसने दुकान क्रय कर ली है । याची और उसकी माता ने प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध उसकी अवैध कार्यों पर प्रतिषेध लगाने के लिए एक वाद तारीख 16 जुलाई, 2010 को मूल वाद सं. 2180/2010 फाइल की । उक्त वाद में, वादपत्र की प्रति प्रदर्श पी-5 है । प्रथम प्रत्यर्थी ने भी संपत्ति के ऊपर अनन्य हक का दावा करते हुए याची और उसकी माता तथा उसके भाइयों के विरुद्ध एक वाद, मूल वाद सं. 2426/2010 फाइल की । उक्त वाद में प्रथम प्रत्यर्थी ने याची और उसकी माता के विरुद्ध व्यादेश के लिए भी एक अन्तर्वर्ती आवेदन फाइल किया किन्तु इसे खर्चों सिहत तारीख 6 सितम्बर, 2010 को खारिज कर दिया गया । आदेश की प्रति प्रदर्श पी-6 है ।
- 5. प्रथम प्रत्यर्थी और उसके गुंडों ने दुकान खाली करने के लिए याची को धमकाते हुए दवाब बनाना आरम्भ कर दिया । याची पुलिस के समक्ष तारीख 18 जुलाई, 2010 को शिकायत (प्रदर्श पी-7 और प्रदर्श पी-8) फाइल करने को बाध्य हुआ । किन्तु प्रथम प्रत्यर्थी के प्रभाव में आते हुए उप-निरीक्षक ने प्रथम प्रत्यर्थी का पक्ष लिया और वह भी याची को धमकाना प्रारम्भ कर दिया । इसलिए, याची ने प्रदर्श पी-9 के रूप में उप-पुलिस निरीक्षक के समक्ष उप-निरीक्षक के विरुद्ध एक अभ्यावेदन दिया । इन सबके बावजूद भी पुलिस ने उसे तंग करना जारी रखा ।
- 6. याची, पुलिस के तंग करने के विरुद्ध एक रिट याचिका, रिट याचिका (सिविल) सं. 36924/2010 फाइल करने के लिए बाध्य हुआ । उक्त रिट याचिका में, सरकारी प्लीडर ने यह निवेदन किया कि पुलिस हस्तक्षेप नहीं करेगी क्योंकि यह एक सिविल विवाद्यक है और तद्नुसार, रिट याचिका निपटाई गई । निर्णय की प्रति प्रदर्श पी-10 है । तथापि, प्रथम प्रत्यर्थी ने मूल वाद सं. 2180/2010 में प्रदर्श पी-12 के रूप में तारीख 19 जुलाई, 2010 का एक वचनबद्ध यह फाइल किया कि वह याची को बलपूर्वक सम्पत्ति से बे-कब्जा नहीं करेगा और वह दुकान की दीवार आदि को नहीं तोड़ेगा ।
- 7. इसके पश्चात्, तारीख 21 अप्रैल, 2011 को प्रथम प्रत्यर्थी और उसके अनुचर दुकान परिसर में प्रवेश किए और दुकान का ताला तोड़ दिए

और उसमें रखे फर्नीचर और उपकरणों को नष्ट कर दिए । कतिपय अन्य मूल्यवान वस्तुएं भी नष्ट कर दी गईं । दुकान के उत्तरी दीवार को इसके दक्षिण की ओर खोलने के लिए भागतः नष्ट कर दिया गया । याची द्वारा पुलिस के समक्ष पुनः एक शिकायत दर्ज कराई गई और प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध तारीख 22 अप्रैल, 2011 को एक मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति प्रदर्श पी-11 है ।

- 8. प्रथम प्रत्यर्थी की धमिकयां जारी रहीं और याची को अवैध बे-कब्जा होने की आशंका थी । इसिलए, याची रिट याचिका (सिविल) सं. 12638/2011 के अनुसार पुलिस संरक्षण के लिए इस न्यायालय के समक्ष आने के लिए बाध्य हुआ । इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका में प्रभावी पुलिस संरक्षण मंजूर करते हुए तारीख 26 अप्रैल, 2011 को एक अन्तरिम आदेश पारित किया जिससे कि याची दुकान में निर्विध्न कारबार करने में समर्थ हो सके । उसके बाद, अन्तरिम आदेश को गुणागुणों पर प्रथम प्रत्यर्थी की भी सुनवाई के पश्चात प्रदर्श पी-13 आदेश के अनुसार पूर्ण बना दिया गया ।
- 9. प्रथम प्रत्यर्थी ने विद्युत निगम पर प्रभाव डालते हुए दुकान की बिजली कटवाने की भी कोशिश की और इसे कुछ समय के लिए कटवा भी दिया । याची ने पुनः बिजली जोड़ने के लिए उच्चतर प्राधिकारियों के पास आवेदन किया । याची ने निगम प्राधिकारियों को विधि के अनुसरण के सिवाय उसकी बिजली नहीं काटने का निर्देश देने के लिए एक रिट याचिका सं. 2496/2011 भी फाइल की ।
- 10. प्रथम प्रत्यर्थी, बलपूर्वक और अवैध तौर से याची को दुकान से बेदखल करने के लिए सभी प्रयास में विफल रहने पर तारीख 6 मई, 2011 को मुंसिफ न्यायालय के समक्ष एक वाद, मूल वाद सं. 1654/2011 फाइल की । वादपत्र की प्रति प्रदर्श पी-1 है । वाद में यह प्रार्थना की गई कि तृतीय प्रत्यर्थी-निगम को यह निर्देश दिया जाए कि वह द्वितीय प्रत्यर्थी को निगम की अनुज्ञा के बिना दुकान में किसी प्रतिषेधात्मक वस्तुओं का कारबार करने से प्रतिषेध कर दे ।
- 11. द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध व्यादेश के लिए वाद में एक अन्तर्वर्ती आवेदन भी फाइल किया गया और तारीख 27 मई, 2011 को आदेश प्रदर्श पी-2 के अनुसार, एक अन्तरिम व्यादेश जारी किया गया जिसके द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी को बिना अनुज्ञप्ति के या निगम की बिना अनुज्ञा से प्रतिषेधात्मक वस्तुओं का कारबार करने से अवरुद्ध कर दिया गया । प्रदर्श पी-2 आदेश के अनुसरण में, स्वास्थ्य अधिकारी, निगम ने तारीख 1 जून, 2011 को एक

आदेश प्रदर्श पी-3 जारी करते हुए 24 घंटों के भीतर दुकान बन्द करने का निर्देश दिया जिसमें असफल रहने पर याची को यह भी सूचित किया गया कि कोई अन्य सूचना दिए बिना विभाग द्वारा स्वयं दुकान बन्द कर दिया जाएगा ।

- 12. यद्यपि, आदेश प्रदर्श पी-3 द्वितीय प्रत्यर्थी को जारी किया गया था फिर भी, इसे याची पर तामील किया गया क्योंकि वह दुकान के कब्जे में था । याची से दुकान बन्द करने के लिए कहा गया जिसमें असफल रहने पर उसे यह भी सूचित किया गया कि दुकान स्वयं निगम द्वारा बन्द कर दिया जाएगा । याची, जो वस्तुतः दुकान में कारबार कर रहा था, आदेश प्रदर्श पी-2 और पी-3 से व्यथित और प्रभावित था । याची के अनुसार, वाद प्रदर्श पी-1 फाइल करने में ही कपट, दुर्भावना और अवैधता के कारण दूषित था । यह याची को तंग करने और उसके अधिकारों को समाप्त करने को ध्यान में रखते हुए द्वितीय प्रत्यर्थी की दुरभिसंधि में फाइल किया । अतएव, याची ने वादपत्र प्रदर्श पी-1 और आदेश प्रदर्श पी-2 तथा प्रदर्श पी-3 को भी अभिखंडित करने की ईप्सा की ।
- 13. सभी प्रत्यर्थियों पर नोटिस तामील की गई थी किन्तु मात्र प्रथम और तृतीय प्रत्यर्थी ने ही प्रति-शपथपत्र फाइल किया और मामले का विरोध किया । द्वितीय प्रत्यर्थी, जिसके विरुद्ध वाद (प्रदर्श पी-1) फाइल किया गया था, एकपक्षीय रहा ।
- 14. प्रथम प्रत्यर्थी ने प्रति-शपथपत्र फाइल किया और निम्नलिखित दलीलें प्रस्तुत कीं संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका सिविल न्यायालय के आदेश के विरुद्ध कायम रखे जाने योग्य नहीं होती है । आदेश प्रदर्श पी-2, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 43 के नियम 1(द) के अधीन अपीलनीय है और अतएव, याची को प्रभावी उपचार उपलब्ध है । प्रदर्श पी-2 किसी त्रुटि या अधिकारिता के आधिक्य से ग्रसित नहीं है और इसे व्यादेश याचिका के साथ फाइल शपथपत्र में किए गए अभिकथनों के समाधान होने पर पारित किया गया था । इसलिए, आदेश प्रदर्श पी-2 को अभिखंडित करने के लिए संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन असाधारण अधिकारिता का अवलंब नहीं लिया जा सकता है ।
- 15. आदेश प्रदर्श पी-2 के बावजूद, याची न्यायालय के आदेश के अतिक्रमण में कुछ दिनों तक दुकान चलाता रहा । अतएव, वह विवेकीय अनुतोषों का हकदार नहीं है । चूंकि याची बिना अनुज्ञप्ति के कारबार कर रहा था इसलिए, इसकी सूचना (प्रदर्श आर 1(ख) द्वारा) प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा निगम को दी गई थी । प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा प्रति-शपथपत्र में यह भी प्रकथन किया

गया है कि प्रदर्श पी-3 को केरल नगरपालिका अधिनियम के अधीन पारित किया गया है और यह भी अपीलनीय है । यह याचिका फाइल करना न्यायालय की प्रक्रिया के घोर दुरुपयोग की कोटि में आता है और यह कायम रखे जाने योग्य नहीं है, यह भी दलील दी गई ।

- 16. तृतीय प्रत्यर्थी-निगम ने प्रति-शपथपत्र फाइल किया और यह दलील दी कि प्रथम प्रत्यर्थी ने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अधीन तारीख 31 मार्च, 2011 को एक आवेदन यह जानने के लिए फाइल की थी कि क्या याची के पास दुकान में कारबार चलाने के लिए अनुज्ञप्ति थी। अतएव, निगम द्वारा एक जांच की गई थी और इससे यह प्रकट हुआ कि बिना अनुज्ञप्ति प्राप्त किए फोटोस्टेट और एस. टी. डी. बूथ दुकान में चल रहे थे और स्टेशनरी सामान भी दुकान में बेचे जा रहे थे। इसलिए, याची को कारबार के लिए अनुज्ञप्ति लेने का निर्देश दिया गया किन्तु उसने यह सूचित किया कि भवन के संबंध में कुछ विवाद है और मामला सिविल न्यायालय के समक्ष लम्बित है।
- 17. निगम के अनुसार, याची ने निगम को यह सूचित किया कि सिविल न्यायालय द्वारा मामले में अंतिम आदेश पारित किए जाने के पश्चात् वह स्वामियों की सहमति-पत्र के साथ अनुज्ञप्ति के लिए एक आवेदन फाइल करेगा । निगम द्वारा फाइल प्रति-शपथपत्र में यह भी कथन किया गया कि निगम द्वारा आदेश प्रदर्श पी-3 जारी किया गया था यह निर्देश देते हुए कि पक्षकार नोटिस प्राप्ति के 24 घंटों के भीतर कारबार बन्द कर दे और रिपोर्ट का अनुपालन किया जाए ।
- 18. दोनों पक्षकारों को सविस्तारपूर्वक सुना गया । दूसरी ओर, प्रदर्श पी-1 से प्रदर्श पी-13 और प्रदर्श आर 1(क) से आर 1(च) चिन्हांकित किए गए । इस मामले में अन्तर्ग्रस्त विधिक विवाद्यकों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, अन्तर्ग्रस्त विधिक पहलुओं पर स्वतंत्र मत लेने और इस मामले में सही विनिश्चय लेने के लिए मेरी सहायता करने हेतु श्री एन. सुब्रमणियम् को न्यायिमत्र के रूप में नियुक्त किया गया । उन्हें भी सविस्तारपूर्वक सुना गया ।
- 19. इस याचिका को कायम रखने को ही प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा चुनौती दी गई है । प्रत्यर्थी श्री के. राजकुमार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल ने यह तर्क दिया कि वादपत्र को अभिखंडित करने के लिए ईप्सित अनुतोष स्वयमेव ही अनोखा और अनसुना है तथा यदि ऐसा अनुतोष मंजूर किया जाता है तो इससे उच्च न्यायालय में मुकदमों की भरमार हो जाएगी । यह भी जोरदार तर्क दिया कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन ऐसा

अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता क्योंकि आदेश प्रदर्श पी-2 और पी-3 के विरुद्ध पर्याप्त और प्रभावी उपचार उपलब्ध हैं क्योंकि वे आदेश अपीलनीय हैं।

20. यह निवेदन किया गया कि यदि याची आदेश प्रदर्श पी-2 से व्यथित है तो वह आदेश को उपांतिरत करने की ईप्सा करते हुए स्वयमेव ही सिविल न्यायालय के समक्ष जा सकता है । प्रदर्श आर 1(ग) के अनुसार वाद में याची को अभिवाचित करने के लिए एक याचिका फाइल की गई । प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी इंगित किया गया कि आदेश प्रदर्श पी-2 और पी-3 याची के विरुद्ध जारी नहीं किए गए हैं और अतएव, उसे इन याचिकाओं को फाइल करने के लिए सुने जाने का अधिकार नहीं है । यह भी निवेदन किया गया कि याची ने याचिका में यह मिथ्या प्रकथन किया गया है कि निगम द्वारा उसे दुकान आदि में कारबार बन्द करने के लिए नोटिस जारी किया गया था । यह भी इंगित किया गया कि प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 द्वितीय प्रत्यर्थी को जारी की गई हैं न कि याची को ।

21. मुंसिफ न्यायालय द्वारा कोई रिट जारी नहीं किया जा सकता है जैसा कि नरेश बनाम महाराष्ट्र राज्य वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है जिसका अनुसरण नल्लाकोया बनाम प्रशासक, लक्षद्वीप संघ राज्य क्षेत्र और अन्य वाले मामले में किया गया, प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी तर्क दिया गया है । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि कपट के प्रश्न की अनुच्छेद 227 के अधीन कार्यवाहियों में परीक्षा नहीं की जा सकती है । उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य बनाम प्रमोद कुमार शुक्ला और एक अन्य वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हुए प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से यह भी तर्क दिया गया कि कपट को, वाद में याची को अभिवाचित करने के पश्चात् स्वयमेव ही सिविल न्यायालय के समक्ष सिद्ध किया जाना चाहिए और न कि इस न्यायालय के समक्ष ।

22. यह भी निवेदन किया गया है कि याची द्वारा निगम से अनुज्ञप्ति के बिना कारबार किया जा रहा था और यदि आक्षेपित आदेशों को इस न्यायालय द्वारा अभिखंडित किया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप उसे बिना अनुज्ञप्ति के कारबार जारी रखना मंजूर करना होगा, यह भी तर्क दिया गया । यह भी निवेदन किया गया कि सुस्थिर सिद्धांतों के अनुसार उच्च न्यायालय इस याचिका में आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है ।

¹ ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1.

² 1968 के. एल. टी. 60.

³ (2008) 12 एस. सी. सी. 267.

23. याची के विद्वान् काउंसेल श्री जीजो पाल द्वारा उद्भूत दलील इस प्रकार है - इस मामले के तथ्यों और प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा उठाए गए प्रत्येक कदमों से यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने याची को तंग करने और यह देखने के लिए कि दुकान में चल रहे कारबार बन्द हो जाएं, कपटपूर्वक वाद (प्रदर्श पी-1) फाइल किया है । उसने याची को उस दुकान से बेदखल करने के लिए सभी अवैध प्रयास करने में असफल रहने के पश्चात् यह वाद फाइल किया जो काफी लम्बे समय से किराएदार के रूप में उसके कब्जे में था।

24. यह निवेदन किया गया कि प्रथम प्रत्यर्थी ने न्यायालय से आदेश प्राप्त करने के लिए वाद में प्रतिवादी के रूप में याची को अभिवाचित करने में जानबूझकर और कपटपूर्वक लोप किया तािक इससे दुकान बन्द करने के लिए आदेश पारित करने हेतु निगम के उद्देश्य का दुरुपयोग हो सके । वाद में दुरिभसंधि है और वादपत्र यह मिथ्या प्रकथन किया गया है कि द्वितीय प्रत्यर्थी दुकान के कब्जे में है, यद्यपि प्रथम प्रत्यर्थी पूर्णतया इस बात को जानता था कि याची स्वयं ही दुकान में कारबार कर रहा था क्योंकि याची और प्रथम प्रत्यर्थी के बीच विभिन्न मुकदमे चल रहे थे ।

25. यह भी निवेदन किया गया कि प्रथम प्रत्यर्थी ने वादपत्र में यह मिथ्या वर्णन किया है कि दुकान में खतरनाक और प्रतिषिद्ध वस्तुएं रखी हुई हैं, यह अच्छी तरह से जानते हुए कि दुकान में फोटोस्टेट और टेलीफोन बूथ आदि चल रहे हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि प्रथम प्रत्यर्थी ने निगम से प्रदर्श पी-3 आदेश जारी कराया और इसे याची पर तामील करवाया, यद्यपि आदेश, द्वितीय प्रत्यर्थी को अग्रेषित था । प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा किया गया यह सब कार्य याची को तंग करने और मुंसिफ न्यायालय में कपट करने के दुर्भावनापूर्ण आशय से किया गया ।

26. याची के विद्वान् काउंसेल ने इस बात पर भी जोरदार तर्क दिया कि किसी न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा कोई आदेश पारित किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप घोर अन्याय प्रकट होता है यद्यपि इस प्रकार का आदेश अन्यायोचित नहीं हो सकता है, तो अभिवाचित तथ्यों पर उच्च न्यायालय संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन अधीनस्थ न्यायालय के ऐसे आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है जैसा कि राधे श्याम और एक अन्य बनाम छबीनाथ और अन्य¹, सूर्य देव राय बनाम राम चन्दर राय और

_

¹ (2009) 5 एस. सी. सी. 616.

अन्य 1 , जय सिंह और अन्य बनाम नगर निगम, दिल्ली और एक अन्य 2 और शालिनी श्याम शेट्टी और एक अन्य बनाम राजेन्द्र शंकर पाटिल 3 ।

27. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी तर्क दिया कि संविधान, 1950 के दोनों अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय में निहित अन्तर्निहित शक्तियां काफी व्यापक हैं और न्यायालय पक्षकारों के बीच न्याय करने कि लिए कोई भी प्रक्रिया अपना सकता है जैसा वह ठीक समझता है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा इस तर्क की पुष्टि में विभिन्न अन्य विनिश्चयों को भी उद्धृत किया (देखें : सली और अन्य बनाम संतोष में, महासचिव, के. टी. डी. सी. वर्कर्स एसोशिएशन बनाम श्रम न्यायालय में, कृष्ण कुमार बनाम राजस्थान राज्य है, राधे श्याम और एक अन्य बनाम छबीनाथ और अन्य नाम राजेन्द्र शंकर पाटिल ने, जय सिंह और अन्य बनाम नगर निगम, दिल्ली और अन्य होत. जी. एन. कुमार बनाम केरल राज्य और अन्य तथा कन्हैयालाल लालचन्द सचदेव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य न्य हो।

28. यह भी दलील दी गई कि याची वाद में पक्षकार नहीं होने के नाते और प्रदर्श पी-3 याची के नाम में जारी नहीं होने के नाते (यद्यपि यह याची पर तामील की गई थी), उसे किसी अन्य फोरम के समक्ष कोई अन्य उपचार उपलब्ध नहीं है और अतएव, यह याचिका, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन कायम रखे जाने योग्य है । याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी तर्क दिया कि यदि विचारण न्यायालय द्वारा पारित व्यादेश स्वयं ही अवैध है तो उससे प्रभावित होने वाले व्यक्ति द्वारा अपील के उपचार का अवलंब लिए बिना अनुच्छेद 227 के अधीन कार्यवाहियों में उसे चुनौती दी जा सकती हैं जो वाद में पक्षकार नहीं है । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा मनोज बनाम ग्रवायूर देवासओम¹⁰ वाले

¹ (2003) 6 एस. सी. सी. 675 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3044.

² (2010) 9 एस. सी. सी. 385.

³ (2010) 8 एस. सी. सी. 329.

⁴ 2010 (8) के. एल. टी. 676.

⁵ 2002 (1) के. एल. टी. एस. एन. 112.

⁶ 1992 एस. सी. 1790.

⁷ 2009 (5) एस. सी. सी. 616.

⁸ 2011 (2) एस. सी. सी. 772.

⁹ 2011 (2) एस. सी. सी. 782.

¹⁰ 2011 (2) के. एल. टी. 1022.

मामले में अभिनिर्धारित किया गया है।

- 29. याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि सिविल न्यायालय के आदेशों की परीक्षा उन अपवादिक मामलों में ही की जा सकती है जहां प्रकटतः घोर अन्याय हुआ है । प्रदर्श पी-1 वादपत्र और प्रदर्श पी-2 तथा प्रदर्श पी-3 आदेशों के परिणामस्वरूप घोर अन्याय हुआ है और अतएव, यह उन मामलों में से एक बेहतर मामला है जिसमें सम्पूर्ण कार्यवाहियां याची को अनुकरणीय खर्चे सहित अभिखंडित की जा सकती हैं क्योंकि स्वयं प्रथम प्रत्यर्थी का आचरण जैसा कि इस मामले में प्रस्तुत विभिन्न दस्तावेजों से प्रकट होता है, न्यायसंगत नहीं है, यह भी जोरदार तर्क दिया गया ।
- 30. विद्वान् काउंसेल श्री एन. सुब्रमणियम्, जो न्यायिमत्र के रूप में नियुक्त हुए हैं, ने आरम्भ में ही राज्य के सिविल न्यायालयों के बारे में राज्य के इस दृष्टिकोण की ओर हमारा ध्यान दिलाया है जिनमें बहुत ढेर सारे वाद लिम्बित हैं, जो या तो स्वभावतः कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं अथवा जो अन्तरस्थ हेतु और विरोधी पक्षकार को तंग करने के लिए दुर्भावनापूर्ण आशय से या उस व्यक्ति द्वारा जो वाद का पक्षकार भी नहीं है, फाइल किए गए हैं । सिविल न्यायालयों में फाइल किए गए अधिकतर वाद दुरिभसंधि प्रकृति के होते हैं और यदि ऐसी कार्यवाहियों को जारी रखना मंजूर कर लिया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप घोर अन्याय होगा और यह न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा, यह भी जोरदार तर्क दिया गया ।
- 31. घोर अन्याय तथा न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग को रोकने के लिए इस न्यायालय को संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन उचित मामलों में हस्तक्षेप करना चाहिए, विद्वान् न्यायिमत्र की यह जोरदार राय है । उन्होंने यह भी इंगित किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में जिसे "सी. पी. सी." कहा गया है) की धारा 151 तथा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के अधीन प्राप्त शक्तियों द्वारा भी उचित मामलों में हस्तक्षेप किया जा सकता है । यह भी निवेदन किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के उपबंधों के अनुसार, एक वाद-पत्र को मात्र तभी नामंजूर किया जा सकता है यदि कोई वाद हेतुक नहीं है किन्तु, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 का अवलंब कार्यवाहियों को समाप्त करने के लिए तभी लिया जा सकता है यदि

न्यायालय का यह समाधान हो कि वाद का जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आ जाएगा, उन्होंने रानीपेट नगरपालिका बनाम शमसीर खान¹ वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का मजबूती से अवलंब लिया।

32. विद्वान् काउंसेल श्री एन. सुब्रमणियम् की यह जोरदार राय है कि रानीपेट नगरपालिका (उपर्युक्त) वाला मामला एक अनुदेशात्मक और उदाहरणात्मक विनिश्चय है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि क्या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग आदि की कोटि में आता है । यह भी निवेदन किया है कि यदि मामले के तथ्यों के आधार पर, न्यायालयों का यह निष्कर्ष है कि पक्षकार अप्रत्यक्ष साधनों द्वारा तथा विधि द्वारा स्थापित प्रक्रियाओं के उल्लंघन में न्यायालय के समक्ष आया है तो न्यायालय निश्चित तौर पर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए हस्तक्षेप करेगा।

33. विद्वान् काउंसेल श्री सुब्रमणियम् ने यह भी तर्क दिया कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने की शक्ति प्रत्येक न्यायालय में अन्तर्निहित है । यदि वाद या वैध कार्यवाहियां उस प्रयोजन के लिए आशयित नहीं हैं जिसके लिए यह संस्थित की गई है अपितु यह दुर्भावनापूर्ण है तो यह न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है और कार्यवाहियों को रोक सकता है और यह सिद्धांत प्रिवी काउंसिल द्वारा श्रीधरन बनाम शीतला² तथा बृजराज सिंह और एक अन्य बनाम शियोधन सिंह और अन्य वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों से प्रकट होता है ।

34. विद्वान् न्यायिमत्र द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि यदि न्यायालय का यह समाधान है कि एक पक्षकार द्वारा दुर्भावनापूर्ण कार्यवाहियां संस्थित करते हुए दोषपूर्ण अभिलाभ प्राप्त कर लेता है और इसके परिणामस्वरूप घोर अन्याय हुआ है तो वह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन शक्तियों का अवलंब ले सकता है। (देखे: श्री राम चन्दरन बनाम कृष्ण राज⁴) विद्वान् काउंसेल ने यह भी मजबूत आधार लिया कि एक पक्षकार की चतुराई, जो दुर्भावनापूर्ण आशय से न्यायालय में आता है, को पुरस्कृत नहीं किया जाएगा अपितु न्यायालय को उसके कदम को

¹ 1999 (2) के. एल. जे. 879.

² 1988 (2) के. एल. टी. 732.

³ 1913 (35) आई. एल. आर. (इला.) 337.

⁴ 1996 ला वीकली 559 (मद्रास).

अभिखंडित करते हुए अवैधता समाप्त करनी चाहिए । यद्यपि उपर्युक्त मताभिव्यक्तियां कुछ अन्य संदर्भ में गुजरात उच्च न्यायालय भूपति लाल बनाम भानूमित वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में किए गए हैं, फिर भी उक्त सिद्धांत को इस प्रकृति के मामलों में अपनाया जा सकता है, यह भी निवेदन किया गया ।

35. विद्वान् न्यायिमत्र द्वारा यह भी इंगित किया गया है कि सूर्य देव राय (पूर्वोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न विनिश्चयों का अनुसरण किया और सुसंगत विषय पर सविस्तार चर्चा किया और यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायिक न्यायालय रिट अधिकारिता के अध्यधीन हो सकते हैं । यह प्रास्थिति क्षेत्र को अभिनिर्धारित करती है और अतएव, यह न्यायालय निश्चित तौर पर उक्त विनिश्चय में अधिकथित युक्ति का अवलंब ले सकता है, यह निवेदन किया गया । अतएव, न्यायालय के विरुद्ध रिट फाइल करने की ईप्सा करने वाली रिट याचिका को मात्र इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि न्यायालय के विरुद्ध रिट याचिका फाइल नहीं की जा सकती है, यह तर्क दिया गया ।

36. विद्वान् काउंसेल श्री एन. सुब्रमणियम् ने यह भी तर्क दिया कि इस न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 और संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन वाद को अभिखंडित करने की शक्ति है यदि वाद सद्भाविक नहीं है, जैसा कि माडरेटर चर्च आफ साउथ इंडिया सी. एस. आई. सेन्टर चेन्नई बनाम जे. एस. किंग्सले², महादेव जीव बनाम बी. बी. सेन³ तथा रानीपेट नगरपालिका बनाम एम. शमशीर खान⁴ वाले मामलों में अभिनिधारित किया गया है । विद्वान् न्यायमित्र द्वारा यह भी इंगित किया गया कि रविन्दर कौर बनाम अशोक कुमार⁵ वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि पक्षकार द्वारा अपनाए गए क्रूर तरीके से न्यायिक व्यवस्था में खराबी आ सकती है और न्यायालयों को ऐसे समुचित मामलों में हस्तक्षेप करना चाहिए ।

¹ ए. आई. आर. 1984 गुजरात 10.

² 1992 (2) एम. एल. जे. 277.

³ ए. आई. आर. 1951 कलकत्ता 563.

⁴ 1997 (2) एल. डब्ल्यू. 761.

⁵ (2003) 8 एस. सी. सी. 289.

- 37. दोनों पक्षकारों तथा विद्वान् न्यायिमत्र की सुनवाई करने के पश्चात् और अभिवचनों तथा दस्तावेजों का परिशीलन करने पर, मैं इस मामले के तथ्यों के आधार पर कुछ चीजें अत्यंत आश्चर्यजनक और विशिष्ट पाता हूं । यद्यपि, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा मुंसिफ न्यायालय के समक्ष वाद (प्रदर्श पी-1) वादपत्र को द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा बिना अनुज्ञप्ति आदि के कारबार करने से प्रतिषिद्ध करने के लिए निगम को निर्देश (आर-3) जारी करने हेतु फाइल किया गया था, दस्तावेजों से यह अत्यंत स्पष्ट है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने उनमें से किसी के लिए भी ऐसी कोई डिक्री कभी भी प्राप्त करने के लिए आशयित नहीं था । इसके बजाय, वस्तुतः प्रथम प्रत्यर्थी ने उस याची को निशाना बनाया जो वाद में पक्षकार भी नहीं था । प्रथम प्रत्यर्थी का मात्र आशय यह प्रतीत होता है कि वह याची की दुकान लेना चाहता था और उसके कारबार को किन्हीं या अन्य तरीकों से बन्द कराना चाहता था, जैसा कि विभिन्न दस्तावेजों से पूर्णतया स्पष्ट है ।
- 38. इस उद्देश्य पर पहुंचने के लिए, प्रथम प्रत्यर्थी ने चालाकी से अपना सिक्का चलाया और प्रथम कदम के रूप में उसने उस व्यक्ति के विरुद्ध वाद (आर-2) फाइल किया जिसका दुकान से कुछ भी लेना-देना नहीं था, यह कथन करते हुए कि वह दुकान के कब्जे में है । उसने प्रदर्श पी-1 में यह भी अभिवचन किया कि द्वितीय प्रत्यर्थी ने दुकान आदि में खतरनाक और जोखिमपूर्ण कारबार करने के लिए कुछ अन्य व्यक्तियों को दिया था जो उसकी जानकारी में मिथ्या था । वह पूर्णतया अच्छी तरह जानता था कि याची कई वर्षों से किराएदार के रूप में दुकान के कब्जे में था और वह स्वयं ही फोटोस्टेट आदि का कारबार कर रहा था ।
- 39. इस मामले में, प्रस्तुत विभिन्न दस्तावेजों से यह भी प्रकट होता है कि प्रदर्श पी-1 वादपत्र फाइल करने के काफी समय पूर्व, प्रथम प्रत्यर्थी और याची के बीच उसी दुकान जो प्रदर्श पी-1 की विषयवस्तु है, के संबंध में विभिन्न मुकदमे मुंसिफ न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष भी चल रहे थे । प्रदर्श पी-5 (वादपत्र की प्रति) से यह प्रकट होता है कि याची और उसकी माता द्वारा वर्तमान वाद फाइल करने के लगभग एक वर्ष पूर्व प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध मूल वाद सं. 2180/2010 फाइल की गई थी, जिसके द्वारा उन्होंने प्रथम प्रत्यर्थी को दुकान की बिजली कनेक्शन काटते हुए और दुकान की उत्तरी दीवार नष्ट करते हुए उसी दुकान से उन्हें अवैध रूप से बेदखल करने से अवरुद्ध करने की मांग की थी ।
 - 40. प्रथम प्रत्यर्थी ने मुंसिफ न्यायालय के समक्ष फाइल तारीख 19

जुलाई, 2010 के शपथपत्र प्रदर्श पी-12 में यह स्वीकार किया है कि याची दुकान के कब्जे में है । प्रदर्श पी-12 के अनुसार उसने यह भी वचनबंध किया है कि वह याची को बलपूर्वक या दुकान की उत्तरी दीवार नष्ट करके बेदखल नहीं करेगा । रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा तारीख 26 अप्रैल, 2011 का अन्तरिम आदेश पारित किया गया था, जिसके द्वारा प्रभावी पुलिस संरक्षण उपलब्ध कराने का आदेश दिया गया था, जिससे कि याची दुकान में प्रथम प्रत्यर्थी को अवैध बाधा पहुंचाए बिना कारबार करने में समर्थ हो सके । यह आदेश बाद में अन्तिम (प्रदर्श पी-13 द्वारा) भी बना दिया गया था ।

- 41. उपर्युक्त रिट याचिका में प्रथम प्रत्यर्थी ने यह भी वचनबंध (उक्त याचिका में आदेश प्रदर्श पी-13 द्वारा) दिया था कि वह याची को दुकान के कब्जे से बेदखल नहीं करेगा । उस रिट याचिका की अन्तिम सुनवाई के अवसर पर, प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा कोई सदोष कृत्य करने का आशय नहीं है जैसा कि याची आदि द्वारा आशंका व्यक्त की गई है । यह सभी तथ्य प्रदर्श पी-13 से प्रकट होते हैं जो याची द्वारा पुलिस संरक्षण के लिए फाइल की गई रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा दिया गया आदेश है जिसमें प्रथम प्रत्यर्थी एक पक्षकार था जिसे गुणागुणों पर सुना गया था ।
- 42. इस न्यायालय के आदेश प्रदर्श पी-10 द्वारा यह भी प्रकट होता है कि याची ने पुलिस द्वारा परेशान करने के विरुद्ध रिट याचिका (सिविल) सं. 36924/2010 फाइल की थी और वही दुकान उक्त रिट याचिका की भी विषयवस्तु थी और प्रथम प्रत्यर्थी उस याचिका में भी एक पक्षकार था । प्रदर्श पी-11 से यह भी प्रकट होता है कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष यह लिखित वचनबंध फाइल करने के पश्चात् भी कि वह याची को अवैध रूप से बेदखल नहीं करेगा, वह अभिकथित रूप से अवैध गतिविधियां जारी रखी और अतएव, याची ने उसी दुकान के संबंध में, प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध आपराधिक शिकायत फाइल की थी । प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध एक आपराधिक मामला भी दर्ज किया गया और तारीख 22 अप्रैल, 2011 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति प्रदर्श पी-11 है।
- 43. मुंसिफ न्यायालय द्वारा मूल वाद सं. 2426/2010 में याची के विरुद्ध अन्तरिम व्यादेश के लिए प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल व्यादेश आवेदन में तारीख 6 सितम्बर, 2011 को पारित आदेश प्रदर्श पी-6 है । यह अविवादित है कि उस वाद की विषयवस्तु भी वही दुकान थी । विद्वान् मुंसिफ न्यायालय ने प्रदर्श पी-6 में यह मत व्यक्त किया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा दुकान में समय-

समय पर मरम्मत करने के लिए व्यक्त की गई आवश्यकता मात्र याची आदि को दुकान से बेदखल करने का प्रयास है । प्रदर्श पी-6 में यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रथम प्रत्यर्थी का दावा करने में सद्भावना नहीं थी और प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध फाइल व्यादेश के लिए याचिका खर्चे सहित खारिज कर दी गई थी ।

44. उपर्युक्त इन सभी चीजों से निगम कार्यालय द्वारा जारी प्रदर्श आर 1 (ख) से यह प्रकट होता है कि वर्तमान वाद फाइल करने के पूर्व प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा निगम के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया था, यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या उसी दुकान के संबंध में कोई अनुज्ञप्ति जारी की गई थी और निगम ने प्रथम प्रत्यर्थी को यह उत्तर दिया था कि याची को नोटिस दिया गया था जो उक्त दुकान में कारबार कर रहा था और उसने निगम को यह सूचित किया था कि उसके और दुकान के स्वामियों के बीच तीन वाद लम्बित हैं और जब तक उनका (उन तीन वादों में से दो वाद याची और प्रथम प्रत्यर्थी के बीच थें) निपटारा नहीं हो जाता है तब तक वह दुकान के स्वामियों से सहमित पत्र नहीं लेगा । प्रदर्श आर 1 (ख) से यह भी प्रकट होता है कि यह प्रथम प्रत्यर्थी को अग्रेषित था और निगम ने उसे सूचित किया कि याची दुकान आदि में अभिनाम "सिटी फोटोस्टेट" के अधीन कारबार कर रहा है ।

45. प्रदर्श पी-1 के अनुसार, वर्तमान वाद फाइल करने के पूर्व प्रथम प्रत्यर्थी को प्रदर्श आर 1 (ख) जारी किया गया था । प्रदर्श आर 1 (ख) तारीख 26 अप्रैल, 2011 का है जबिक प्रदर्श पी-1 वादपत्र तारीख 6 मई, 2011 को फाइल किया गया है जो प्रदर्श आर 1 (ख) जारी होने के लगभग 10 दिनों पश्चात् का है । प्रदर्श पी-6 से प्रदर्श पी-9 और प्रदर्श पी-11 से यह प्रकट होता है कि उसी दुकान के संबंध में याची और प्रथम प्रत्यर्थी के बीच पुलिस के समक्ष अन्य कार्यवाहियां भी चल रही थीं । स्वीकृततः, याची द्वारा प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाहियां भी आरम्भ की गई थीं, इस अभिकथन पर कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा दुकान की विद्युत आपूर्ति काटने का प्रयास किया गया था।

46. वर्तमान वाद में, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल शपथपत्र प्रदर्श आर 1 (क) से भी यह स्पष्ट होता है कि वह यह भी जानता था कि उसी दुकान के संबंध में याची और प्रथम प्रत्यर्थी के हितपूर्वाधिकारी के बीच एक वाद चल रहा था और याची का दुकान के ऊपर किराएदार के रूप में अधिकार सिविल न्यायालय के समक्ष पूर्णतया सिद्ध हो गया था । इस प्रकार, विभिन्न मुकदमों

और अन्य कार्यवाहियों को देखते हुए, प्रथम प्रत्यर्थी स्वयं ही वर्तमान वाद फाइल करने के पूर्व इस बात को पूर्णरूपेण जानता था कि याची स्वयं ही दुकान के अधिभोग में है और वह किराएदार के रूप में काफी लम्बे समय से दुकान में कारबार कर रहा है । प्रथम प्रत्यर्थी यह भी जानता था कि द्वितीय प्रत्यर्थी का दुकान में कारबार करने से कोई लेना-देना नहीं था ।

47. इन सभी के बावजूद, वर्तमान वाद फाइल करते समय, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा प्रदर्श पी-1 वादपत्र में यह कथन किया गया है कि द्वितीय प्रत्यर्थी दुकान का प्रयोग करता है और अन्य व्यक्तियों को सप्ताहवार आधार पर दुकान में प्रतिषिद्ध और खतरनाक वस्तुओं का कारबार करने के लिए पट्टे पर दिया है । उसने वादपत्र में किराएदार के रूप में दुकान पर याची के कब्जे के बारे में कोई भी बात नहीं की है । इन सभी सुसंगत तथ्यों को छिपाया गया है और उसने प्रदर्श पी-1 वादपत्र और प्रदर्श आर 1 (क) शपथपत्र में कतिपय तथ्यों का कथन किया है जो उसकी स्वयं की जानकारी में सभी मिथ्या हैं । मिथ्या अभिवचनों के आधार पर प्रथम प्रत्यर्थी ने मुंसिफ न्यायालय से द्वितीय प्रत्यर्थी को दुकान आदि में कारबार करने से अवरुद्ध करते हुए व्यादेश प्रदर्श पी-2 भी प्राप्त कर लिया था । यद्यपि, उक्त आदेश द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध प्राप्त किया गया था फिर भी यह याची के विरुद्ध दुरुपयोग करने के लिए आशयित था ।

48. प्रदर्श पी-2 आदेश प्राप्त करने के पश्चात् निगम से भी दुकान बन्द करने का निर्देश देते हुए, प्रदर्श पी-3 आदेश जारी करवा लिया । यद्यपि, प्रदर्श पी-3 द्वितीय प्रत्यर्थी के प्रति अग्रेषित था फिर भी इसे याची पर तामील किया गया जो वस्तुतः दुकान में कारबार कर रहा था । निगम के विद्वान् काउंसेल श्री वी. एम. श्यामकुमार ने ऋजुता यह स्वीकार किया है कि प्रदर्श पी-2 आदेश के अनुसरण में ही निगम ने दुकान में कारबार बन्द करने के लिए प्रदर्श पी-3 आदेश पारित किया था और यद्यपि आदेश द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध जारी किया गया था फिर भी इसे याची पर तामील किया गया क्योंकि वह वस्तुतः दुकान के कब्जे में था । याची को भी दुकान बन्द करने का निर्देश दिया गया था । यह सभी तथ्य निगम द्वारा फाइल प्रति-शपथपत्र से भी प्रकट होते हैं ।

49. इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि यद्यपि प्रदर्श पी-2 और पी-3 आदेशों को प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध प्राप्त किए गए थे फिर भी वे याची को तंग करने हेतु दुरुपयोग करने के लिए आशयित थे । यह भी स्पष्ट है कि उन आदेशों को यह सुनिश्चित करने के लिए प्राप्त किया गया था कि याची की दुकान और उसके द्वारा लम्बे समय से किए गए कारबार को बन्द करा दिया जाए । प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 आदेशों को प्राप्त करने के लिए अपनाए गए साधन और तरीके अत्यन्त अवांछनीय थे और उन्हें किसी भी न्यायालय द्वारा अनुमोदित नहीं किया जा सकता है।

50. यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह तर्क उद्भूत किया गया है कि प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 आदेश द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध पारित किए गए हैं न कि याची के विरुद्ध और अतएव याची को सुने जाने आदि का अधिकार नहीं है । एक व्यक्ति जो उन तथ्यों के अभिवचनों के आधार पर जो उसकी स्वयं की जानकारी में मिथ्या हैं, के आधार पर न्यायालय से एक आदेश प्राप्त कर लेता है, उस व्यक्ति को शामिल किए बिना जिसके विरुद्ध आदेश का दुरुपयोग करने का एकमात्र आशय के साथ कार्यवाहियों में वस्तुतः लिक्षत किया गया है तो पूर्ववर्ती की यह कहते हुए सुनवाई नहीं की जाएगी कि बाद वाले ऐसे आदेश को चुनौती देते हुए सुने जाने का कोई आधार नहीं है, मात्र इस आधार पर कि आदेश अन्य व्यक्ति के विरुद्ध पारित किया गया है न कि उस लिक्षत व्यक्ति के विरुद्ध पारित किया गया है ।

51. यदि न्यायालय का यह समाधान है कि किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति को अपहानि पहुंचाने के लिए प्रवंचनापूर्ण उपायों से एक आदेश प्राप्त कर लिया है तो इससे स्वतः ही असम्यक् अपहानि हो सकती है । इसलिए, सुने जाने आदि के अधिकार का प्रश्न इस प्रकार के मामलों में अत्यधिक सुसंगत नहीं होते हैं । न्यायालय द्वारा किसी भी कीमत पर, किसी व्यक्ति को अपनी स्वयं की बेईमानी का असम्यक् लाभ उठाने और यह दलील देने की कि अन्य पक्षकार जिसे उसके द्वारा अवैध तौर पर अपहानि कारित की गई है, को सुने जाने का अधिकार नहीं है, की अनुज्ञा नहीं दी जाएगी । उसे उस अन्य व्यक्ति को खतरे में डालने के लिए न्यायालय से निवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है, जो न्याय के लिए न्यायालय में आता है ।

52. अतएव, यह तर्क कि याची को सुने जाने का अधिकार नहीं है और यह कि उसे कपट आदि सिद्ध करने के लिए सिविल न्यायालय में जाना चाहिए, मात्र नामंजूर ही किया जा सकता है । दूसरी ओर, मैं इस तर्क में विचारणीय बल पाता हूं कि प्रथम प्रत्यर्थी ने प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 आदेशों को बेईमानीपूर्वक प्राप्त करने के लिए कुटिल और घृणित कदमों का

सहारा लिया जिसका एकमात्र आशय याची के विरुद्ध उसकी दुकान बन्द कराने के लिए दुरुपयोग करना था । इसलिए, मैं सुने जाने आदि के आधार पर इस याचिका को खारिज नहीं कर सकता हूं ।

53. इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि प्रदर्श पी-2 आदेश पारित नहीं किया जाता यदि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा व्यादेश के लिए शपथपत्र/आवेदन प्रदर्श पी-1 या प्रदर्श आर 1(क) में सही तथ्यों का वर्णन किया होता । यदि विद्वान् मुंसिफ न्यायालय मुकदमे के इतिहास को जान गए होते तो उनके द्वारा कभी भी प्रदर्श पी-2 एकपक्षीय व्यादेश पारित नहीं किया जाता । यदि विद्वान् मुंसिफ न्यायालय यह जानते होते कि इस न्यायालय ने याची को उसी दुकान में कारबार करने के लिए प्रभावी पुलिस संख्राण मंजूर किया है (अन्तरिम आदेश द्वारा, जैसा कि प्रदर्श पी-13 आदेश में उद्धृत है) तो यह असंभाव्य होता कि याची की सुनवाई किए बिना उसी दुकान में कारबार करने के संबंध में प्रदर्श पी-2 आदेश पारित किया जाता । यदि प्रदर्श पी-2 जैसे आदेश पारित नहीं किए गए होते तो प्रथम प्रत्यर्थी इस प्रास्थिति में नहीं होता कि वह निगम से प्रदर्श पी-3 आदेश पारित करवा लेता और उसे याची पर तामील करवा लेता जिससे बाद में हानि कारित हुई ।

54. यदि प्रदर्श पी-1 वादपत्र और प्रदर्श आर 1(क) के प्रकथन जो प्रथम प्रत्यर्थी की जानकारी में मिथ्या थे काल्पनिक रूप से प्रभावित नहीं होते तो इससे विकृत वादपत्र बनता जिसके आधार पर किसी न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित नहीं कर सकता था । वाद डिक्री करने के लिए अथवा न ही प्रदर्श पी-2 जैसे व्यादेश प्राप्त करने के लिए कोई वाद हेतुक बचता । इन परिस्थितियों में, याची (जिसके विरुद्ध प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा बेईमानीपूर्वक आदेश प्राप्त कर लिए गए हैं) से यह कहना अनुचित और अऋजु होगा कि वह कार्रवाई स्वयं को अभिवाचित करते हुए और अपना मामला लड़ने के लिए विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण करें।

55. न्यायालय द्वारा इस प्रकार के मामलों में अपनाई गई ऐसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उस पक्षकार के साथ घोर अन्याय होगा जो पहले से ही काल्पनिक मुकदमे द्वारा पीड़ित है जिसके साथ अपने द्वेषपूर्ण उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए न्यायालय के प्राधिकार का दुरुपयोग किया गया है । विधि का शासन और विधि की प्रक्रिया का अभिप्राय न्याय करना है न कि उनके द्वारा किसी व्यक्ति के साथ अन्याय करना है । अतएव, यह तत्काल ही न्यायालय के नोटिस में लाया जाता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को तंग या परेशान करने के एकमात्र आशय से वादपत्र या शपथपत्र में मिथ्या

प्रकथनों द्वारा न्यायालय से कोई आदेश प्राप्त कर लेता है और न्यायालय ऐसा करने में अपने उपकरणों का उपयोग करता है तो न्यायालय इसे पुनः खोल सकता है और किसी अपहानि में कोई विलम्ब किए बिना सम्पूर्ण मामले की परीक्षा कर सकेगा।

56. मेरे विवेक में यह भी लाया गया है कि कोई कार्यवाही जो अन्तरस्थ हेतु से आरम्भ की गई है, वह साधारणतया सभी आवश्यक अभिवचनों द्वारा समर्थित होगा । वस्तुतः, ऐसा संक्षेप यह सुनिश्चित करने के लिए सही रूप से बेहतर प्ररूप होगा कि इससे उद्देश्य भ्रमित नहीं हो । इसलिए, ऐसे मामलों में, न्यायालय के लिए यह कार्य आसान नहीं होता है कि वह प्रारम्भ में ही, बुरे हेतुक मुकदमों की शनाख्त कर सके, विनिर्दिष्टतया यदि विरोधी पक्षकार परिदृश्य से बाहर रहते हुए जानबूझकर निशाना लगाता है । इसलिए, यह संभाव्य है कि ऐसे वाद में पारित आदेश प्रकटतः अन्यायोचित नहीं हो सकता है ।

57. किन्तु, यदि बाद में न्यायालय की जानकारी में यह आता है कि कोई व्यक्ति वादपत्र या शपथपत्र में किए गए प्रकथनों या अभिवचनों जो उसकी स्वयं की जानकारी में मिथ्या हैं, के आधार पर कोई आदेश प्राप्त कर लेता है तो न्यायालय उससे होने वाले अपहानि, यदि ऐसे आदेश द्वारा कोई होती है, को रोकने के लिए प्रत्येक संभव कार्य करेगा । न्यायालय वादपत्र और शपथपत्र से ऐसे सभी मिथ्या अभिवचनों को तत्काल समाप्त कर देगा और बिना उनके ही ऐसे अभिवचनों का परिशीलन करेगा और यह देखेगा कि यदि उसमें कुछ बचा है तो इसके लिए आगे कार्यवाही करेगा । यदि विकृत वादपत्र या शपथपत्र में कुछ नहीं बचा है तो न्यायालय उस वाद-पत्र के आधार पर आरम्भ की गई कार्यवाहियों का अंत कर देगा जो मिथ्या अभिवचनों से अन्तर्ग्रसित है । न्यायालय मामले में कोई अन्य कार्यवाही करने से भी इनकार कर देगा । मेरे अनुसार, यह अनुक्रम न्यायपालिका और न्याय प्रशासन की व्यवस्था में लोगों का विश्वास बनाए रखने और न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए अनिवार्य है ।

58. ऐसा इसलिए भी, यदि कोई व्यक्ति उस वादी के विरुद्ध प्रतिवादी के रूप में अभिवाचित है जिसका आशय डिक्री या आदेश प्राप्त करना नहीं है अपितु किसी अन्य व्यक्ति को तंग करने के लिए दुर्भावनापूर्ण आशय से अभिवाचित करना है तो ऐसे प्रतिवादी का नाम भी कार्यवाहियों से तत्काल समाप्त कर दिया जाएगा । यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष होता है कि किसी व्यक्ति को एक पक्षकार के रूप में उसके विरुद्ध तैयार करना है जिसके

विरुद्ध कोई डिक्री या आदेश प्राप्त करने की ईप्सा की गई है तो यह कहने में कोई तर्क या कारण नहीं हो सकता है कि न्यायालय को कार्यवाही जारी रखनी चाहिए । मेरे अनुसार, न्यायालय को कार्यवाहियां बन्द कर देना चाहिए बजाय इसके कि फाइल पर वाद लाने के, क्योंकि इससे बेईमान मुकदमेबाज एक अन्य व्यक्ति को अभिवाचित करने और वाद-पत्र में उपयुक्त तरीके से वाद-पत्र में संशोधन कराने में सफल हो जाएगा ।

- 59. ऐसी कोई विधि या प्राधिकार नहीं है जिसमें न्यायालय ऐसे अऋजु या अन्यायोचित कार्यों को मान्यता दे यद्यपि तकनीकी रूप से प्रक्रियात्मक विधि इन सभी चीजों को संभाव्य बना सकती है । अतएव, मेरे सुविचारित मत में, न्यायालय उस मुकदमेबाज (जिसने अन्य व्यक्ति को अपहानि पहुंचाने के लिए प्रवंचनापूर्ण तरीके द्वारा न्यायालय से आदेश प्राप्त कर लिया है) जिसने फाइल पर संक्षिप्त अभिवचन किया है, का सम्मान नहीं करेगा । मेरे अनुसार, एक मुकदमेबाज की बेईमानी जो एक अन्य व्यक्ति को अपहानि पहुंचाने के अपने बुरे उद्देश्य पर पहुंचने के लिए न्यायालय को एक साधन के रूप में इस्तेमाल करता है, को सभी संभाव्य तरीके से हतोत्साहित और निन्दित किया जाना चाहिए । किसी को भी न्यायालय के प्राधिकार का दुरुपयोग करना मंजूर नहीं करना चाहिए ।
- 60. न्यायालय को यह रमरण रखना चाहिए कि बेईमानीपूर्वक साधनों द्वारा प्राप्त किसी आदेश से न्यायपालिक की ही प्रतिष्ठा नष्ट हो सकती है और लोगों का न्याय प्रशासन की व्यवस्था से विश्वास उठ सकता है । पक्षकार की धूर्तता को, जो ठोस आधारों और दुर्भावनापूर्ण आशय से न्यायालय में आता है, न्यायालय की मौनानुकूलता द्वारा पुरस्कृत नहीं किया जाएगा । न्यायालय को सुदृढ़ता और प्रबलतापूर्वक कथन करना चाहिए और इस संस्था के विश्वास को लोगों में बनाए रखने के लिए सकारात्मक रूप से भी कार्य करना चाहिए ।
- 61. यह दुखदायी और अत्यन्त घृणित है कि कतिपय लोग अपने घृणित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए न्यायालय को एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल करते हैं । समय-समय पर न्यायालय की प्रक्रिया का अत्यधिक दुरुपयोग किया गया है अथवा अधिकारों का उपयोग करने के मुकाबले इनका दुरुपयोग किया गया है । न्यायालयों को ऐसी प्रवृत्ति को बढ़ावा देना मंजूर नहीं किया जाना चाहिए । यह तभी अवरुद्ध या समाप्त होगा जब यह इस प्रकार विकसित हो जाएगा कि न्याय ऐसे मुकदमेबाजों के हाथों आहत नहीं होगा । न्यायालय को इन सभी को समाप्त करने के लिए स्वयं कोई रास्ता ढूंढना

चाहिए, कार्यवाहियां जो किसी अन्य व्यक्ति को अपहानि पहुंचाने के एकमात्र हेतु से आरम्भ की जाती हैं, उस व्यक्ति द्वारा अपेक्षित परिणाम पर पहुंचने के लिए न्यायालय को एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

62. किन्तु, इसके बाद यह प्रश्न कि क्या न्यायालय को सिविल वाद समाप्त करने की शक्ति है, इसके लिए उपबंध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 में भी है। संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 का अवलंब न्याय का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए लिया जा सकता है। राज्य बनाम नवजोत संधू वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि "संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 की शक्तियां व्यापक हैं और न्याय का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए ही इनका प्रयोग किया जा सकता है"। संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 को निर्दिष्ट करते हुए रमेश चन्द्र संकल बनाम विक्रम सीमेन्ट वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:—

"इसका प्रयोग अधिकारतः अर्थात् न्याय का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है । यह साम्यिक प्रकृति का है । पर्यवेक्षणात्मक अधिकारिता का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय न केवल एक विधि न्यायालय के रूप में कार्य करता है अपितु यह एक साम्या न्यायालय के रूप में भी कार्य करता है । इसलिए, यह सुनिश्चित करना न्यायालय की शक्ति और ड्यूटी भी है कि अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग न्याय का उद्देश्य प्राप्त करने और अन्याय का उन्मूलन करने के लिए किया जाना चाहिए ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

63. **रोशन दीन** बनाम **प्रीति लाल**³ वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन शक्ति के प्रयोजन को न्यायालयों को स्मरण कराते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:—

"12. समय के साथ-साथ इस न्यायालय ने यह रमरण दिलाया कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति न्याय देने के लिए है न कि इसे

¹ (2003) 6 एस. सी. सी. 641.

² (2008) 14 एस. सी. सी. 58.

³ (2002) 1 एस. सी. सी. 100.

निष्फल करने के लिए । उच्च न्यायालयों को प्रदत्त इस प्रकार की सांविधानिक शक्तियों का प्रयोजन ही यह है कि विधि के अतिक्रमण द्वारा किसी व्यक्ति के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

64. रमेश चन्द्र संकल बनाम विक्रम सीमेन्ट (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन शक्ति की प्रकृति को पुनः दोहराया जो इस प्रकार है:

"उपर्युक्त मामलों से यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन शक्तियां विवेकीय और साम्यिक हैं और इनका प्रयोग न्याय के बृहत्तर हित में किया जाना अपेक्षित होता है । आवेदक के पक्ष में अनुतोष मंजूर करते समय न्यायालय को हित और साम्या के संतुलन को ध्यान में रखना चाहिए । मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए अनुतोष मंजूर किया जा सकता है । ऐसा समुचित आदेश पारित किया जा सकता है जो न्याय की मांग है और साम्या का उद्देश्य है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

65. सूर्य देव राय बनाम राम चन्दर राय¹ वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन निहित शक्ति के पीछे सर्वोपिर विचार "न्याय के रास्तों पर चलना और उनमें आने वाली बाधाओं को दूर करना" है । मैं इस मुद्दे पर प्राधिकार से भिन्न मत नहीं रखता हूं । मेरे द्वारा इस बारे में कई तरह के अनुसंधान किए गए हैं । माननीय उच्चतम न्यायालय ने सूर्य देव राय (उपर्युक्त) वाले मामले में राय व्यक्त की है 'शक्ति है किन्तु इसका प्रयोग विवेकीय है जो न्यायिक अनुभवों और न्यायधीशों के व्यवहारिक ज्ञान की संवृद्धि की न्यायिक संचेतना के एकमात्र आदेश द्वारा शासित होगा ।'

66. इस प्रकार, इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि इस न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष लम्बित किसी कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 और 226 के अधीन पर्याप्त शक्तियां हैं यदि ऐसा हस्तक्षेप करने के लिए समुचित न्यायिक आधार है। किन्तु, इस प्रकार की शक्ति विवेकीय होने के नाते इसका प्रयोग

_

¹ (2003) 6 एस. सी. सी. 675.

मात्र तभी किया जाएगा यदि न्यायिक संचेतना और व्यवहारिक ज्ञान न्यायालय को न्याय करने और घोर अन्याय को रोकने के लिए ऐसा आदेश देते हैं । किन्तु, इनका प्रयोग सभी परिस्थितियों में नहीं किया जाएगा ।

67. तथापि, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के संदर्भ में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि "साधारणतया, यह उच्च न्यायालय के लिए अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग करते हुए मात्र इस बात पर विचार करने के लिए ही खुला है कि क्या अपनी अधीक्षण अधिकारिता के अध्यधीन न्यायालय या अधिकरण के विनिश्चय में अधिकारिता संबंधी त्रुटि हुई है" । (देखें : पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम समर कुमार सरकार¹) प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने उपर्युक्त युक्ति का समर्थन करते हुए मजबूती से यह तर्क दिया कि प्रदर्श पी-2 आदेश जारी करने में अधिकारिता संबंधी कोई त्रुटि या आधिक्य नहीं हुआ है और अतएव, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 का अवलंब नहीं लिया जा सकता है।

68. तथ्यों पर विचार करते हुए, मैं इसका उत्तर दूंगा । जैसा कि मेरे द्वारा पहले ही इंगित किया जा चुका है, यह प्रकट है कि प्रदर्श पी-1 वाद-पत्र को उपयुक्त छिपाव तथा निगमित कतिपय अभिवचनों द्वारा प्ररूपित किया गया था जो स्वयं ही प्रथम प्रत्यर्थी की जानकारी में सत्य नहीं था । यह अपनी सुविधा के लिए न्यायालय से आदेश प्राप्त करने के लिए किया गया था ताकि वह याची के विरुद्ध उसका दुरुपयोग कर सके । इसलिए, अभिवचनों का परिशीलन करने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालय ने अधिकारिता संबंधी कोई त्रृटि या आधिक्य में कार्य किया है ।

69. इसे भी विवादित नहीं किया जा सकता कि वाद-पत्र को चालाकी और बेईमानीपूर्ण तरीके से प्ररूपित किया गया है जिससे उस व्यक्ति के लिए यह किठन नहीं हो सकता कि वह अधिकारिता संबंधी त्रुटि का लाभ लेते हुए न्यायालय से कोई आदेश आसानी से प्राप्त कर सके । प्ररूप की संगणना करने पर फाइल वाद में मिथ्या वाद हेतुक सृजित करना संभाव्य हो सकता है और एक एकपक्षीय आदेश प्राप्त किया जा सकता है जो अधिकारिता के किसी त्रुटि या आधिक्य से दूषित नहीं हो सकता है । प्रवंचनापूर्ण तरीके से एक वाद द्वारा ऐसा आदेश आसानी से प्राप्त किया जा सकता है जो अभिवचनों के आधार पर न्यायोचित हो सकता है । इसलिए, मात्र इस कारण से कि अधिकारिता संबंधी त्रुटि या आधिक्य में नहीं है जो रिष्टिपूर्ण प्ररूप की

¹ (2009) 15 एस. सी. सी. 444.

कोटि में आता है, यह न्यायालय संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन शक्ति का अवलंब लेने या इनकार करने में नहीं हिचकिचाएगा ।

70. भारत का संविधान, न्यायालयों से अति उच्च नैतिक भूमिका की उम्मीद करता है । यदि न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि ऐसा वाद फाइल करते हुए कार्यवाहियां आरम्भ की गई हैं, जो मिथ्या वर्णन के साथ कपटपूर्ण है जो स्वयं वादी की जानकारी में मिथ्या है और यदि न्यायालय का यह समाधान है कि ऐसी कार्यवाहियां जारी रखने के परिणामस्वरूप घोर अन्याय होगा अथवा न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा तो न्यायालय ऐसी कार्यवाहियों को समाप्त कर सकता है । एक मिथ्या वाद को विकसित या जीवित रखने के लिए इसकी जहरीली जड़ों में न्यायालय द्वारा खाद या पानी नहीं डाला जाएगा । संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन शक्तियों का अवलंब न्याय कायम रखने और अन्याय का उन्मूलन करने के लिए ऐसे वाद को न्यायालय की फाइल से यथाशीघ्र अभिखंडित करने के लिए लिया जाना चाहिए ।

71. न्यायालय का समय मूल्यवान होता है और इसे उस व्यक्ति के लिए बचाकर रखना होता है जो न्यायालय में ईमानदारी से आता है । इसका समय परिरक्षित किया जाएगा और उस ईमानदार मुकदमेबाज के लिए उपयोग किया जाएगा जो न्यायालय से न्याय के योग्य होगा । एक पक्षकार जो ऐसे अन्तर्निहित अभिवचनों के वादपत्र के साथ आता है जो उसकी स्वयं की जानकारी में मिथ्या होता है वह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करता है । न्यायालय ऐसे व्यक्ति को बाहर का दरवाजा दिखा देना चाहिए । उसका वादपत्र अवश्य ही अभिखंडित कर दिया जाना चाहिए क्योंकि वह किसी भी प्रकार से वादपत्र नहीं होता है यदि मिथ्या अभिवचनों से इसे समाप्त किया जा सकता है । संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 की शक्ति का प्रयोग ऐसी प्रकृति के वादपत्रों को अभिखंडित करने के लिए किया जा सकता है और अवश्य ही किया जाना चाहिए ।

72. मद्रास उच्च न्यायालय ने **रानीपेट नगरपालिका** बनाम **एम.** शमशीर खान¹ वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :—

"जब स्वयं विधिक कार्यवाहियों के आरम्भ में ही प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जाता है तो न्यायालय को यह देखने का कर्तव्य होता है कि प्रत्यर्थी उस मुकदमे का लाभ नहीं ले सके और स्थानीय

-

¹ 1997 (2) एल. डब्ल्यू. 761.

प्राधिकारी को भी परेशानी में नहीं डाल सके। उपर्युक्त परिस्थितियों के अधीन वाद में फाइल वादपत्र को फाइल पर ही अभिखंडित कर दिया जाता है।"

73. श्रीधरन बनाम शीतला¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :—

"इस प्रकार के आदेशों को करने के लिए न्यायालय की शक्ति न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए आवश्यक है जो कि प्रत्येक न्यायालय में अन्तर्निहित होता है (देखें - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151) ।"

74. उपर्युक्त विनिश्चय भी मेरे मत का समर्थन करते हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 में यह अधिकथित है कि इस संहिता की किसी भी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह ऐसे आदेशों के देने की न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति को परिसीमित या अन्यथा प्रभावित करती है, जो न्याय के उद्देश्यों के लिए या न्यायालय की आदेशिका के दुरुपयोग का निवारण करने के लिए आवश्यक है । यह सुस्थिर और सुज्ञात है कि दुर्भावनापूर्ण आशय से आरम्भ की गई दांडिक कार्यवाहियों को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में "सी. आर. पी. सी." कहा गया है) की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का अवलंब लेते हुए अभिखंडित की जाती हैं, यद्यपि चालाकीपूर्ण प्ररूप से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट द्वारा अपराध को प्रकट किया जाता है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 और दंड प्रक्रिया संहिता. 1973 की धारा 482 भी उन्हीं प्रयोजनों के लिए संविधि में लाया गया है । न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का अवलंब न्याय उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए लिया जाता है और ऐसी शक्ति प्रत्येक न्यायालय में अन्तर्निहित होती हैं । ऐसी शक्ति को न्याय के उद्देश्य आदि प्राप्त करने के लिए संविधि द्वारा सुनिश्चित ही नहीं की गई है अपित् ऐसी शक्तियों की कोई परिसीमा भी अधिकथित नहीं की गई है।

75. भजन लाल बनाम हरियाणा राज्य² वाले मामले में, सातवें आधार को जिससे उच्च न्यायालय दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए हकदार हो जाता है इस प्रकार कथित किया गया है:—

"(7) जहां दांडिक कार्यवाही प्रकटतः दुर्भावना से ग्रसित है

¹ 1988 (2) के. एल. टी. **73**2.

² ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 604.

और/अथवा जहां कार्यवाही अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के लिए और उससे प्राइवेट और व्यक्तिगत वैमनस्य को ध्यान में रखते हुए, दुर्भावनापूर्ण अन्तरस्थ हेतु से संस्थित की गई है।"

76. सुस्थिर सिद्धांतों के अनुसार, यद्यपि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट जो प्रथमदृष्ट्या एक अपराध प्रकट करता है, को धारा 482 के अधीन अभिखंडित नहीं किया जाएगा, यदि न्यायालय का यह समाधान होता है कि कार्यवाहियां अन्तरस्थ हेतु या दुर्भावनापूर्ण रूप से संस्थित की गई हैं तो न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित कर सकता है । यह स्पष्टतः उपदर्शित करता है कि न्यायालयों को दुर्भावनापूर्ण मुकदमे को संज्ञान में लेना चाहिए और कार्यवाहियों के आरम्भ में ही उस पर तत्परता से कार्यवाही करनी चाहिए ।

77. इसिलए, मैं यह नहीं समझता हूं कि क्यों न्यायालय की अन्तर्निहित शिक्त का अवलंब लेते हुए दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए सिविल और दांडिक कार्यवाहियों के बीच विभेद किया जाना चाहिए यदि न्यायालय कार्यवाहियों को जारी रखना न्यायालय के दुरुपयोग की कोटि में पाता है और यह मिथ्या प्रकथनों और अभिकथनों के आधार पर संस्थित की गई है । यदि न्यायालय का यह समाधान होता है कि वाद दुर्भावनापूर्ण आशय और वादपत्र में निगमित अभिवचनों द्वारा अन्तरस्थ हेतु से फाइल किया गया है जो स्वयं वादी की जानकारी में मिथ्या है तो न्याय की यह मांग होती है कि ऐसे वाद को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन अन्तर्निहित शिक्त का अवलंब लेते हुए अभिखंडित कर दिया जाए ।

78. यदि न्यायपालिका का विश्वास और विश्वसनीयता को बनाए रखना है तो व्यक्ति, जो न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करता है, उसकी न्यायालयों द्वारा शनाख्त की जानी चाहिए और समुचित मामलों में विधि के मजबूत हाथों द्वारा उनके बुरे प्रयासों का अंत कर दिया जाना चाहिए । जैसा कि टी. अरिवन्दनम बनाम टी. वी. सत्यपाल और एक अन्य वाले मामले में न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्ण अय्यर द्वारा मुझे रमरण कराया गया था । "विधि के लम्बे हाथों द्वारा ऐसे मुकदमों के विकृतिकरण को बन्द कर दिया जाना चाहिए यदि न्यायपालिका में समुदाय के विश्वास और विश्वसनीयता को जीवित रखना है।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

1

¹ (1977) 4 एस. सी. सी. 467.

79. मुझे इस विवाद्यक पर अपने मत को कायम रखने के लिए **इच्चर** ट्रैक्टर लिमिटेड बनाम हिरहर सिंह¹ वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय से भी समर्थन मिलता है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने उक्त विनिश्चय में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:—

"न्यायालय का अस्तित्व न्याय को बढ़ावा देने के लिए है और यदि किसी प्राधिकारी द्वारा इसके दुरुपयोग का कोई प्रयास किया जाता है जिससे कि अन्याय होता हो तो न्यायालय को ऐसे दुरुपयोग को रोकने की शक्ति प्राप्त होती है । ऐसी किसी कार्रवाई को मंजूर करना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करना होगा जिसके परिणामस्वरूप अन्याय होता है और न्याय की उन्नित बाधित होती है । शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्यायालय ऐसी किसी कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए न्यायानुमत होगा यदि उसका यह निष्कर्ष होता है कि इसका आरम्भ या जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आता है अथवा इन कार्यवाहियों को अभिखंडित करना न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अन्यथा भी अपेक्षित है।"

80. यदि अभी भी ऐसा कोई प्रश्न बना हुआ है कि क्या ऐसी सिविल कार्यवाहियों को समाप्त करने के लिए न्यायालय की कोई शक्ति है जो अन्तरस्थ हेतु से वाद फाइल करते हुए आरम्भ की गई है तो मेरे अनुसार ऐसा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 द्वारा भी किया जा सकता है । इस निर्णय के पहले ही मैंने कतिपय विनिश्चयों को उद्धृत किया है जो संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के साथ ही अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति को निर्दिष्ट करता है । रुकमणि नारवेकरु बनाम विजय सतरदेकर² वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :—

"13. वह विधि जिनमें दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 अथवा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा दांडिक कार्यवाहियां अभिखंडित की जा सकती हैं, को हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है (देखें एस. सी. सी. पैरा 102 और 103) । इस विनिश्चय का अनुसरण कई पश्चात्वर्ती विनिश्चयों अर्थात् पेप्सी फूड्स लि. बनाम न्यायिक मजिस्ट्रेट, मीनू कुमारी बनाम

¹ 2008 के. एच. सी. 6970 = 2008 (15) एस. सी. ए. एल. ई. 60.

² (2008) 14 एस. सी. सी. 1.

बिहार राज्य वाले मामले आदि में किया गया है।"

81. यदि माननीय उच्चतम न्यायालय की राय में, दुर्भावना के साथ आरम्भ की गई दांडिक कार्यवाहियां न्यायालय में जारी रखना मंजूर नहीं की जा सकेगी और वे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन अभिखंडित की जा सकती हैं तो यह समान रूप से सिविल कार्यवाही में भी लागू होनी चाहिए क्योंकि ऐसी दोनों ही कार्यवाहियां यदि दुर्भावनापूर्ण और मिथ्यापूर्ण तरीके से आरम्भ की जाती हैं तो वे इस देश के नागरिकों के अधिकारों और दायित्वों को प्रतिकृल रूप से प्रभावित कर सकती हैं और उनके परिणामस्वरूप उनके साथ घोर अन्याय भी हो सकता है । न्यायालय द्वारा सिविल कार्यवाही या संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सांविधानिक शक्तियों का अवलंब लेते हुए फाइल की गई वाद में बिना किसी तर्क या कारण के विभेद नहीं किया जाएगा ।

82. यह सत्य है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने मुसरफ हुसैन खान बनाम **भागीरथ इंजीनियरिंग लि.** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि "साधारणतया संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट न्यायालय द्वारा एक न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध उत्प्रेषण रिट जारी नहीं की जाएगी" (देखें : **नरेश श्रीधर मिराजकर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**), जैसा कि प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान काउंसेल द्वारा इंगित किया गया है, किन्तू, जैसा कि याची के विद्वान काउंसेल द्वारा इंगित किया गया है, सूर्य देव राय बनाम रामचन्दर राय और अन्य² वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत चर्चा करने और विभिन्न पूर्व-निर्णयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात निम्नलिखित अधिकथित किया है :-

"19. इस प्रकार, इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायिक न्यायालय के आदेश और कार्यवाहियां, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अध्यधीन हैं।"

83. इसलिए, उपर्युक्त उद्घोषणाओं के प्रकाश में, इस बारे में कोई भी संदेह नहीं हो सकता है कि उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायिक न्यायालय संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट अधिकारिता के अध्यधीन हैं । वे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट अधिकारिता के भी

¹ (2006) 3 एस. सी. सी. 658.

² (2003) 6 एस. सी. सी. 675 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3044.

अध्यधीन हो सकते हैं ।

84. उपर्युक्त सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि इस न्यायालय के समक्ष दुर्भावनापूर्ण या अन्तरस्थ हेतु के साथ आरम्भ की गई सिविल कार्यवाहियों को समाप्त करने में इस न्यायालय द्वारा कोई गलती नहीं की गई है, जिसका जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा । इस मत को अपनाने के लिए मुझे कोई अफसोस या पछतावा नहीं है कि इससे उच्च न्यायालय के समक्ष मुकदमों की बाढ़ सी आ जाएगी । न्यायालयों का अस्तित्व बिना किसी आधारहीन आशंका या उर के न्याय कायम रखने के लिए होता है । इसलिए, न्याय के उद्देश्य को सुनिश्चित करने और घोर अन्याय का उन्मूलन करने के लिए इस न्यायालय को संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226, अनुच्छेद 227 अथवा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन ऐसे वाद को अभिखंडित करने की शक्ति है जिसमें ऐसे अभिवचन अन्तर्विष्ट हैं जो स्वयं वादी के जानकारी में मिथ्या हैं और बिना इसके वाद-पत्र किसी भी प्रकार से वाद-पत्र नहीं होता है ।

85. एक व्यक्ति जो उस एक अन्य व्यक्ति के हाथों ग्रिसत होता है जिसने मिथ्या वाद फाइल किया है तो उसे सिविल न्यायालय में जाने के लिए वापस नहीं भेजा जा सकता है यह कथन करते हुए कि उसे विधि के अधीन एक अन्य उपचार उपलब्ध है । यह हो सकता है कि उसके पास एक अन्य उपचार हो, किन्तु यह उस प्रकार प्रभावी नहीं हो सकता है जैसा कि बुरे हेतुक और मिथ्या वादपत्र को अभिखंडित करने का उपचार है जो अन्तरस्थ हेतु से फाइल की गई है । यह प्रश्न नहीं है कि क्या एक पक्षकार को कोई अन्य उपचार उपलब्ध है किन्तु वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या उपचार, यदि कोई हो प्रभावी रूप से उपलब्ध है जिसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के अधीन मंजूर किया जा सकता है ।

86. इस मामले के तथ्यों के आधार पर मेरा यह समाधान है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने ऐसे कई अन्तर्विष्ट तथ्यों में प्रदर्श पी-1 वादपत्र फाइल किया है जो उसकी जानकारी में मिथ्या हैं । यदि ऐसे तथ्यों को वादपत्र से काल्पनिक रूप से निकाल दिया जाए तो कोई भी अनुतोष मंजूर करने के लिए वाद-पत्र में कुछ नहीं बचेगा । इसलिए, यदि द्वितीय प्रत्यर्थी का नाम जुड़े हुए पक्षकार से काल्पनिक रूप से निकाल दिया जाता है तो कोई भी आदेश जैसे प्रदर्श पी-2 आदेश पारित नहीं किया जा सकेगा । प्रदर्श पी-3 आदेश को प्रदर्श पी-2 आदेश के अनुसरण में पारित किया गया है । इन परिस्थितियों

में, प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 आदेशों को इस निर्णय में अधिकथित सिद्धांतों के प्रकाश में, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226, अनुच्छेद 227 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन अभिखंडित किया जाता है।

87. इस संदर्भ में, प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि याची को इन कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान वाद में अभिवाचित किया गया है और अतएव, याची को अपने उपचार हेतु विचारण न्यायालय के समक्ष जाने के लिए निर्देश दिया जा सकता है । यदि मेरे द्वारा ऐसा अनुक्रम अपनाया जाता है तो यह याची को परेशान करने के लिए एक अन्य अवसर देते हुए प्रथम प्रत्यर्थी को पुरस्कृत करना होगा, जो पहले से ही न्याय पाने के लिए दर-दर भटकते हुए प्रथम प्रत्यर्थी के मजबूत हाथों से ग्रिसत है । मैं मामले पर पुनः विचार नहीं करता हूं और मेरे अनुसार, मात्र प्रभावी उपचार यह है कि प्रदर्श पी-1 के आधार पर आरम्भ की गई सभी कार्यवाहियां अभिखंडित कर दी जाएं ।

88. याची को किसी अन्य परेशानी से रोकने के लिए और प्रथम प्रत्यर्थी की प्रेरणा पर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए भी मैं याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदन के अनुसार प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध अनुकरणीय खर्चे का भी आदेश देता हूं । इस मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मैं युक्तियुक्त अनुकरणीय खर्चे के रूप में 25,000/- रुपए नियत करता हूं । सत्यपाल सिंह बनाम भारत संघ¹ वाले मामले में इसी अनुक्रम को अनुमोदित किया गया है और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :-

"अनुकरणीय खर्चे अधिरोपित किए जाते हैं जहां दावा मिथ्या या कष्टप्रद पाए जाते हैं या जहां एक पक्षकार दुर्व्यपदेशन, कपट या तथ्यों को छिपाने का दोषी पाया जाता है।"

इला विपिन पांड्या (2) बनाम समिता अम्बालाल पटेल² वाले मामले में भी माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :—

"24. हमने इस मुकदमे का विस्तृत इतिहास देते हुए सलाह के रूप में इस बात पर जोर दिया है कि वे जो न्यायालय की कार्यवाहियों को हल्के से लेने का प्रयास करते हैं या अपने लाभ के लिए न्यायिक

¹ (2010) 12 एस. सी. सी. 70.

² (2007) 6 एस. सी. सी. 750.

प्रक्रिया को समाप्त करने की कोशिश करते हैं वे ऐसा अपनी जोखिम पर करते हैं । अनुकरणीय खर्चों को अधिरोपण पारिणामिक रूप में होना चाहिए।"

89. अमिताभ बच्चन कारपोरेशन लिमिटेड बनाम महिला जागरण मंच¹ वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:—

"किन्तु, इसे चेतावनी के रूप में लेना चाहिए कि भविष्य में ऐसे न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग से याचियों के पक्ष में अनुकरणीय खर्चों का संदाय करने के लिए आदेश दिया जा सकता है।"

90. निष्कर्ष निकालने के पूर्व, कुछ शब्दों की अभिव्यक्ति करना हमारा कर्तव्य है । अति प्रशंसा के साथ मैं इस न्यायालय को सेवाएं देने और सहायता करने के लिए विद्वान् काउंसेल श्री एम. सुब्रमणियम् के प्रति अत्यधिक आभार प्रकट करता हूं जिन्हे न्यायमित्र के रूप में नियुक्त किया गया । मैं यहां यह भी उल्लेख करता हूं कि उन्होंने उस मुकदमेबाज समाज के प्रति अपनी गंभीर नाराजगी अभिव्यक्त की है जिन्होंने प्राधिकार और न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है । उनके लिए यह निर्णय मेरा संदेश है ।

परिणामतः, निम्मलिखित आदेश पारित किया जाता है :-

- (i) तद्द्वारा, प्रदर्श पी-1 वादपत्र और उक्त वादपत्र के आधार पर आरम्भ की गई सभी आगे की कार्यवाहियां अभिखंडित की जाती हैं।
 - (ii) प्रदर्श पी-2 और पी-3 आदेश भी अभिखंडित किए जाते हैं ।
- (iii) मुंसिफ न्यायालय को प्रदर्श पी-1 के आधार पर आरम्भ की गई सभी कार्यवाहियों को बन्द करने का निर्देश दिया जाता है।
- (iv) प्रथम प्रत्यर्थी इस आदेश की प्रति प्राप्त करने के एक माह के भीतर याची को 20,000/- रुपए अनुकरणीय खर्चे के रूप में संदाय करेगा ।

यह याचिका खर्चों सहित मंजूर की जाती है।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

क.

¹ (1997) 7 एस. सी. सी. 91.

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि.

बनाम

अब्दुल रज्जाक और एक अन्य

तारीख 13 फरवरी, 2012

न्यायमूर्ति थोट्टाथिल बी. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति सी. टी. रवि कुमार

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 – धारा 4(1)(क) और (ख) – दुर्घटना – प्रतिकर – नियोजन के दौरान घटना न होने का अभिवचन – नियोजक की गाड़ी चलाने के दौरान घटना घटित होना – नियोजक प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायित्वाधीन है।

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 – धारा 4(1)(क) – दुर्घटना – प्रतिकर – दावे की धनराशि से अधिक के लिए अधिनिर्णय – विधिमान्यता – जहां आवेदक द्वारा गलत आकलन या संगणना के आधार पर कम धनराशि की मांग की गई हो वहां न्यायालय सही आकलन के आधार पर प्रतिकर अधिनिर्णीत कर सकता है भले ही वह दावा की धनराशि से अधिक हो ।

बीमाकर्ता द्वारा यह अपील कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । ऐसी कोई अपील तब तक फाइल नहीं की जा सकती जब तक कि उसमें प्रथम परंतुक को दृष्टिगत करते हुए विधि का कोई सारवान् प्रश्न अन्तर्वलित न हो । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित — विधायिका ने उन क्षतियों का वर्गीकरण किया है जो अनुसूची में सम्मिलित की गई हैं और साथ में उपधारणा उपबंध भी किए गए हैं । धारा 4(1)(क) ऐसे मामलों के बारे में बताती है जहां क्षति के कारण मृत्यु हुई । सौभाग्यवश हमारे समक्ष के मामले में ऐसा नहीं हुआ है । धारा 4(1)(ख) ऐसे मामलों के बारे में उपबंध करती है जहां क्षति के परिणामस्वरूप स्थायी पूर्ण निःशक्तता हुई है । सौभाग्यवश इस मामले में दावाकर्ता स्थायी रूप से पूर्णतया निःशक्त नहीं हुआ है । यह मामला स्थायी "आंशिक" निःशक्तता का है । अतः आवेदक को देय प्रतिकर का निर्धारण धारा 4क (1)(ख) के अन्तर्गत नहीं आता है । समान रूप से यह धारा

4(1)(ग) के अन्तर्गत आता है जो ऐसे मामलों के संबंध में है जहां क्षति के परिणामस्वरूप स्थायी आंशिक निःशक्तता हुई है । धारा 4(क) और (ख) के स्पष्टीकरण 2 में नियत 4 हजार रूपए की नियत सीमा उन मामलों में लागू नहीं होती है जो धारा 4(1)(ग) के अन्तर्गत आते हैं । अतः बीमाकर्ता की यह उपदर्शित करने वाली दलील कि आयुक्त द्वारा कर्मकार की मासिक आय 4 हजार रूपए मानी जानी चाहिए थी, अधिनियम की धारा 4(1) के खण्ड(1)(क) और (ख) के पश्चात् आने वाले स्पष्टीकरण 2 को लागू करते हुए विफल होती है । मृत्यु को छोड़कर निःशक्तता भौतिक अर्थ में स्थायी पूर्ण निःशक्तता, स्थायी आंशिक निःशक्तता, अस्थायी पूर्ण निःशक्तता या अस्थायी आंशिक निःशक्तता हो सकती है । ये ऐसे प्रकार हैं जिनपर भौतिक निःशक्तता को शरीर की स्थिति के निबंधनों में वर्गीकृत किया जा सकता है । जहां यह उपार्जन क्षमता की हानि के अंतर्गत आती हो वहां इसका निर्धारण संबंधित व्यक्ति के व्यवसाय के निर्देश में किया जाएगा । यही उपार्जन शक्ति या उपार्जन क्षमता की हानि के निर्धारण की रीति है। यद्यपि कानून में प्रायः 'उपार्जन क्षमता की हानि' अभिव्यक्ति प्रयुक्त की गई है तथापि, चिकित्सा व्यवसायी और चिकित्सा बोर्ड इस बात को अभिव्यक्त करने के लिए भिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं जिसे वे तथ्यतः उपार्जन क्षमता की हानि के रूप में निर्धारित करते हैं । वे चिकित्सा से संबंधित व्यक्ति हैं; न कि विधि से संबंधित । उपार्जन क्षमता की हानि को अभिव्यक्त करने वाला एक तरीका प्रतिशत का उल्लेख करना है जिसे, 'उपजीविका-जन्य निःशक्तता' कहा जाता है । ऐसा निर्धारण घटना के समय आहत के व्यवसाय के संबंध में उपार्जन क्षमता की हानि के सिवाय कुछ नहीं है । वर्तमान मामले में यह आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, अस्पताल, कालीकट में विक्लांगता-विज्ञान के सहायक प्राचार्य द्वारा जारी निःशक्तता प्रमाणपत्र प्रदर्श ए-7 के अनुसार 30 प्रतिशत निर्धारित की गई है । इस प्रकार जो निर्धारण किया गया है वह उपार्जन क्षमता की हानि के सिवाय और कुछ नहीं है । अतः न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि उपार्जन क्षमता की हानि 30 प्रतिशत थी जैसा कि प्राधिकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा निर्धारण किया गया है और जिसे प्रतिकर के निर्धारण के लिए आयुक्त ने लागू किया है और यह वर्तमान मामले में आहत की उपार्जन क्षमता की हानि का निर्धारण है । बीमाकर्ता द्वारा दी गई प्रतिकूल दलील विधि में स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । (पैरा 5 और 6)

अपीलार्थी/बीमाकर्ता ने दूसरी दलील यह दी है कि जहां आवेदक ने

1,50,000/- रुपए के एकमुश्त संदाय का दावा किया है वहां आयुक्त ने गुणक लागू करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि आवेदक घटना की तारीख से साधारण ब्याज सहित प्रतिकर के रूप में 2,17,793/- रपए के लिए हकदार है । बीमाकर्ता ने यह दलील दी कि आयुक्त ने दावा की गई धनराशि से अधिक धनराशि अधिनिर्णीत की है । कर्मकार समाज के एक निम्न वर्ग से संबंधित है । वह एक लारी का चालक है । वह एक ऐसी घटना में गंभीर रूप से आहत हुआ था जो उसके नियोजन के दौरान हुई थी । यह आयुध प्रयोग करके हमले का दृष्टांत है । वह विधायन जिसके अधीन उसे प्रतिकर मंजूर किया गया है, सामाजिक सुरक्षा विधायन का एक भाग है । जैसा कि उस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ ने राधामणि बनाम सचिव, गृह मंत्रालय वाले मामले में अधिकथित किया है कि कर्मकार उस प्रतिकर के लिए हकदार पाया गया है जो कानूनी रूप से नियत है और उसे इससे मात्र इस कारण से इनकार नहीं किया जा सकता कि आवेदक द्वारा प्रतिकर की धनराशि का गलत आकलन या गलत संगणन किया गया है । विधि की यह सुस्थापित प्रतिपादना न्यायालय को इस आधार पर हस्तक्षेप करने के विरुद्ध प्रेरित करती है कि आक्षेपित अधिनिर्णय विधि के ऐसे सारभूत प्रश्न को उद्भूत करता है जिसका उत्तर इस आधार पर बीमाकर्ता के हक में दिया जाए । विनिश्चय के लिए विधि का ऐसा कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है जिसका उत्तर अपीलार्थी के हक में दिया जाए । अपील विफल होती है । (पैरा 7 और 8)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1995] 1995 (1) के. एल. टी. 275 :

न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड बनाम

श्रीधरन ; 4,6

[1995] 1995 (1) एल. एल. एन. 370 : **राधा मणि** बनाम **सचिव, गृह मंत्रालय** । 7

सिविल (अपीली) अधिकारिता : 2011 की एम. एफ. ए. (डब्ल्यू. सी. सी.) सं. 154.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील । अपीलार्थी की ओर से श्री पी. जयशंकर प्रत्यर्थियों की ओर से

श्री के. एम. फिरोज़ और श्रीमती एम. शाजना

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति थोट्टाथिल बी. राधाकृष्णन् ने दिया ।

न्या. राधाकृष्णन् — बीमाकर्ता द्वारा यह अपील कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (अब 'कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923' के रूप में पुनः नामांकित) के अधीन पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है। ऐसी कोई अपील तब तक फाइल नहीं की जा सकती जब तक कि उसमें प्रथम परंतुक को दृष्टिगत करते हुए विधि का कोई सारवान् प्रश्न अन्तर्वलित न हो।

- 2. बीमाकर्ता ने आयुक्त के समक्ष इस अभिवचन के आधार पर बीमाकर्ता को क्षतिपूर्ति के दायित्व से इनकार किया कि घटना नियोजन के दौरान नहीं हुई थी । बीमाकर्ता ने आवेदक द्वारा दावा किए गए एकमुश्त संदाय को और मासिक मजदूरी के बारे में उसके अभिवचन को भी विवादित किया है ।
- 3. आयुक्त ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि आवेदक अपने नियोजक की गाड़ी चला रहा था और जब वह जांच चौकी के पास पहुंचा तो कुछ व्यक्तियों के एक समूह ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, दुर्घटना सहयुक्त आहत प्रमाण पत्र, आयुर्विज्ञान महाविद्यालय अस्पताल का निर्देश कार्ड और पुलिस उपनिरीक्षक द्वारा जारी शरीर महाजर आदि अभिलेख पर पेश किए गए थे । इस प्रकार घटना अधिनियम के उपबंधों की परिधि के भीतर आती है ।
- 4. प्रथमतः अपील के समर्थन में यह दलील दी गई है कि मासिक मजदूरी अधिनियम की धारा 4(1)(क) और (ख) के स्पष्टीकरण II के उपबंध को दृष्टिगत करते हुए 4 हजार रूपए मानी जानी चाहिए और 6 हजार रूपए मासिक मजदूरी मानते हुए आक्षेपित अधिनिर्णय विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है । द्वितीयतः यह दलील दी गई है कि उपार्जन क्षमता की हानि का प्रश्न इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीधरन वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के निबंधनों में किसी अर्हता आयुर्विज्ञान व्यवसायी द्वारा अवधारित नहीं किया गया है । यह भी दलील दी गई है कि आयुक्त ने दावा की गई

_

¹ 1995 (1) के. एल. टी. 275.

धनराशि के आधिक्य में धनराशि अधिनिर्णीत की है ।

5. प्रथमतः हम बीमाकर्ता की इस प्रारंभिक दलील पर विचार करेंगे कि क्या कर्मकार की मासिक आय 4 हजार रूपए मानी जानी चाहिए और इस संबंध में दलील स्पष्टीकरण II के निर्देश में दी गई है जो धारा 4 की उपधारा (1) के खण्ड (क) और (ख) के पश्चात् आता है । अधिनियम के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि विधायिका ने आरंभतः 5 अत्यावश्यकताओं का उल्लेख किया है । जो इस प्रकार हैं – (1) मृत्यु; (2) स्थायी पूर्ण निःशक्तता; (3) स्थायी आंशिक निःशक्तता; (4) अस्थायी पूर्ण निःशक्तता; (5) अस्थायी आंशिक निःशक्तता । हमें यह भी प्रतीत होता है कि विधायिका ने उन क्षतियों का वर्गीकरण किया है जो अनुसूची में सम्मिलित की गई हैं और साथ में उपधारणा उपबंध भी किए गए हैं । धारा 4(1)(क) ऐसे मामलों के बारे में बताती है जहां क्षति के कारण मृत्यू हुई । सौभाग्यवश हमारे समक्ष के मामले में ऐसा नहीं हुआ है । धारा 4(1) (क) ऐसे मामलों के बारे में उपबंध करती है जहां क्षति के परिणामस्वरूप स्थायी पूर्ण निःशक्तता हुई है । सौभाग्यवश इस मामले में दावाकर्ता स्थायी रूप से पूर्णतया निःशक्त नहीं हुआ है । यह मामला स्थायी "आंशिक" निःशक्तता का है । अतः आवेदक को देय प्रतिकर का निर्धारण धारा 4 (1)(ख) के अन्तर्गत नहीं आता है । समान रूप से यह धारा 4(1)(ग) के अन्तर्गत आता है जो ऐसे मामलों के संबंध में है जहां क्षति के परिणामस्वरूप स्थायी आंशिक निःशक्तता हुई है । धारा 4(क) और (ख) के स्पष्टीकरण 2 में नियत 4 हजार रूपए की नियत सीमा उन मामलों में लागू नहीं होती है जो धारा 4(1)(ग) के अन्तर्गत आते हैं । अतः बीमाकर्ता की यह उपदर्शित करने वाली दलील कि आयुक्त द्वारा कर्मकार की मासिक आय 4 हजार रूपए मानी जानी चाहिए थी, अधिनियम की धारा 4(1) के खण्ड (1)(क) और (ख) के पश्चात् आने वाले स्पष्टीकरण 2 को लागू करते हुए विफल होती है।

6. अपील करने वाले बीमाकर्ता की दूसरी दलील में जो न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीधरन वाले मामले पर आधारित है इस तथ्य को कि चिकित्सा प्रमाणपत्र एक अर्हित चिकित्सा व्यवसायी द्वारा जारी किया गया है, विवादित नहीं किया गया है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मृत्यु को छोड़कर निःशक्तता भौतिक अर्थ में स्थायी पूर्ण

¹ 1995 (1) के. एल. टी. 275.

निःशक्तता, स्थायी आंशिक निःशक्तता, अस्थायी पूर्ण निःशक्तता या अस्थायी आंशिक निःशक्तता हो सकती है । ये ऐसे प्रकार के हैं जिनपर भौतिक निःशक्तता को शरीर की स्थिति के निबंधनों में वर्गीकृत किया जा सकता है । जहां यह उपार्जन क्षमता की हानि के अंतर्गत आती हो वहां इसका निर्धारण संबंधित व्यक्ति के व्यवसाय के निर्देश में किया जाएगा । यही उपार्जन शक्ति या उपार्जन क्षमता की हानि के निर्धारण की रीति है । यद्यपि कानुन में प्रायः 'उपार्जन क्षमता की हानि' अभिव्यक्ति प्रयुक्त की गई है तथापि, चिकित्सा व्यवसायी और चिकित्सा बोर्ड इस बात को अभिव्यक्त करने के लिए भिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं जिसे वे तथ्यतः उपार्जन क्षमता की हानि के रूप में निर्धारित करते हैं । वे चिकित्सा से संबंधित व्यक्ति हैं; न कि विधि से संबंधित । उपार्जन क्षमता की हानि को अभिव्यक्त करने वाला एक तरीका प्रतिशत का उल्लेख करना है जिसे, 'उपजीविका-जन्य निःशक्तता' कहा जाता है । ऐसा निर्धारण घटना के समय आहत के व्यवसाय के संबंध में उपार्जन क्षमता की हानि के सिवाय कुछ नहीं है । वर्तमान मामले में यह आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, अस्पताल, कालीकट में विक्लांगता-विज्ञान के सहायक प्राचार्य द्वारा जारी निःशक्तता प्रमाणपत्र प्रदर्श ए-७ के अनुसार 30 प्रतिशत निर्धारित की गई है । इस प्रकार जो निर्धारण किया गया है वह उपार्जन क्षमता की हानि के सिवाय और कुछ नहीं है । अतः हमारा यह समाधान हो गया है कि उपार्जन क्षमता की हानि 30 प्रतिशत थी जैसा कि प्राधिकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा निर्धारण किया गया है और जिसे प्रतिकर के निर्धारण के लिए आयुक्त ने लागु किया है और यह वर्तमान मामले में आहत की उपार्जन क्षमता की हानि का निर्धारण है । बीमाकर्ता द्वारा दी गई प्रतिकूल दलील विधि में स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है।

7. अपीलार्थी/बीमाकर्ता ने दूसरी दलील यह दी है कि जहां आवेदक ने 1,50,000/- रुपए के एकमुश्त संदाय का दावा किया है वहां आयुक्त ने गुणक लागू करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि आवेदक घटना की तारीख से साधारण ब्याज सहित प्रतिकर के रूप में 2,17,793/- रुपए के लिए हकदार है । बीमाकर्ता ने यह दलील दी कि आयुक्त ने दावा की गई धनराशि से अधिक धनराशि अधिनिर्णीत की है । कर्मकार समाज के एक निम्न वर्ग से संबंधित है । वह एक लारी का चालक है । वह एक ऐसी घटना में गंभीर रूप से आहत हुआ था जो उसके नियोजन के दौरान हुई थी । यह आयुध प्रयोग करके हमले का दृष्टांत है । वह विधायन जिसके

अधीन उसे प्रतिकर मंजूर किया गया है, सामाजिक सुरक्षा विधायन का एक भाग है । जैसा कि उस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ ने राधा मिण बनाम सिचव, गृह मंत्रालय वाले मामले में अधिकथित किया है कि कर्मकार उस प्रतिकर के लिए हकदार पाया गया है जो कानूनी रूप से नियत है और उसे इससे मात्र इस कारण से इनकार नहीं किया जा सकता कि आवेदक द्वारा प्रतिकर की धनराशि का गलत आकलन या गलत संगणन किया गया है । विधि की यह सुस्थापित प्रतिपादना न्यायालय को इस आधार पर हस्तक्षेप करने के विरुद्ध प्रेरित करती है कि आक्षेपित अधिनिर्णय विधि के ऐसे सारभूत प्रश्न को उद्भूत करता है जिसका उत्तर इस आधार पर बीमाकर्ता के हक में दिया जाए ।

- 8. विनिश्चय के लिए विधि का ऐसा कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है जिसका उत्तर अपीलार्थी के हक में दिया जाए । अपील विफल होती है ।
- 9. परिणामतः यह अपील खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई।

मह.

¹ 1995 (1) एल. एल. एन. 370.

संसद् के अधिनियम

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का अधिनियम संख्यांक 29)

[23 मई, 1986]

पर्यावरण के संरक्षण और सुधार का और उनसे संबंधित विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

संयुक्त राष्ट्र के मानवीय पर्यावरण सम्मेलन में जो जून, 1972 में स्टाकहोम में हुआ था और जिसमें भारत ने भाग लिया था, यह विनिश्चय किया गया था कि मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए समुचित कदम उठाए जाएं;

यह आवश्यक समझा गया है कि पूर्वोक्त निर्णयों को, जहां तक उनका संबंध पर्यावरण संरक्षण और सुधार से तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और संपत्ति को होने वाले परिसंकट के निवारण से है, लागू किया जाए ;

भारत गणराज्य के सैंतीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

अध्याय 1 प्रारंभिक

- 1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 है ।
 - (2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है।
- (3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी।
- 2. परिभाषाएं इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

- (क) "पर्यावरण" के अंतर्गत जल, वायु और भूमि है और वह अंतर-संबंध है जो जल, वायु और भूमि तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और सूक्ष्मजीव और संपत्ति के बीच विद्यमान है;
- (ख) "पर्यावरण प्रदूषक" से ऐसा ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ अभिप्रेत है जो ऐसी सांद्रता में विद्यमान है जो पर्यावरण के लिए क्षतिकर हो सकता है या जिसका क्षतिकर होना संभाव्य है;
- (ग) "पर्यावरण प्रदूषण" से पर्यावरण में पर्यावरण प्रदूषकों का विद्यमान होना अभिप्रेत है ;
- (घ) किसी पदार्थ के संबंध में, "हथालना" से अभिप्रेत है ऐसे पदार्थ का विनिर्माण, प्रसंस्करण, अभिक्रियान्वयन, पैकेज, भंडारकरण, परिवहन, उपयोग, संग्रहण, विनाश, संपरिवर्तन, विक्रय के लिए प्रस्थापना, अंतरण या वैसी ही संक्रिया;
- (ङ) "परिसंकटमय पदार्थ" से ऐसा पदार्थ या निर्मित अभिप्रेत है जो अपने रासायनिक या भौतिक-रासायनिक गुणों के या हथालने के कारण मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों, सूक्ष्मजीव, संपत्ति या पर्यावरण को अपहानि कारित कर सकती है:
- (च) किसी कारखाने या परिसर के संबंध में "अधिष्ठाता" से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसका कारखाने या परिसर के कामकाज पर नियंत्रण है और किसी पदार्थ के संबंध में ऐसा व्यक्ति इसके अंतर्गत है जिसके कब्जे में वह पदार्थ है ;
- (छ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

अध्याय 2

केन्द्रीय सरकार की साधारण शक्तियां

3. केन्द्रीय सरकार की पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए, उपाय करने की शक्ति – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय सरकार को ऐसे सभी उपाय करने की शक्ति होगी जो वह पर्यावरण के संरक्षण और उसकी क्वालिटी में सुधार करने तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए आवश्यक समझे ।

- (2) विशिष्टतया और उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे उपायों के अंतर्गत निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के संबंध में उपाय हो सकेंगे, अर्थात :
 - (i) राज्य सरकारों, अधिकारियों और अन्य प्राधिकरणों की, -
 - (क) इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन ; या
 - (ख) इस अधिनियम के उद्देश्यों से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन.

कार्रवाइयों का समन्वय ;

- (ii) पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना और उसको निष्पादित करना:
- (iii) पर्यावरण के विभिन्न आयामों के संबंध में उसकी क्वालिटी के लिए मानक अधिकथित करना ;
- (iv) विभिन्न स्रोतों से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन या निस्सारण के मानक अधिकथित करना :

परन्तु ऐसे स्रोतों से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन या निस्सारण की क्वालिटी या सम्मिश्रण को ध्यान में रखते हुए, भिन्न-भिन्न स्रोतों से उत्सर्जन या निस्सारण के लिए इस खंड के अधीन भिन्न-भिन्न मानक अधिकथित किए जा सकेंगे:

- (v) उन क्षेत्रों का निर्बन्धन जिनमें कोई उद्योग संक्रियाएं या प्रसंस्करण या किसी वर्ग के उद्योग, संक्रियाएं या प्रसंस्करण नहीं चलाए जाएंगे या कुछ रक्षोपायों के अधीन रहते हुए चलाए जाएंगे;
- (vi) ऐसी दुर्घटनाओं के निवारण के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय अधिकथित करना जिनसे पर्यावरण प्रदूषण हो सकता है और ऐसी दुर्घटनाओं के लिए उपचारी उपाय अधिकथित करना ;
- (vii) परिसंकटमय पदार्थों को हथालने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय अधिकथित करना :
- (viii) ऐसी विनिर्माण प्रक्रियाओं, सामग्री और पदार्थों की परीक्षा करना जिनसे पर्यावरण प्रदूषण होने की संभावना है ;

- (ix) पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं के संबंध में अन्वेषण और अनुसंधान करना और प्रायोजित करना ;
- (x) किसी परिसर, संयंत्र, उपस्कर, मशीनरी, विनिर्माण या अन्य प्रक्रिया, सामग्री या पदार्थों का निरीक्षण करना और ऐसे प्राधिकरणों, अधिकारियों या व्यक्तियों को, आदेश द्वारा, ऐसे निदेश देना जो वह पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए कार्यवाही करने के लिए आवश्यक समझे ;
- (xi) ऐसे कृत्यों को कार्यान्वित करने के लिए पर्यावरण प्रयोग-शालाओं और संस्थाओं की स्थापना करना या उन्हें मान्यता देना, जो इस अधिनियम के अधीन ऐसी पर्यावरण प्रयोगशालाओं और संस्थाओं को सौंपे जाएं :
- (xii) पर्यावरण प्रदूषण से संबंधित विषयों की बाबत जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करना ;
- (xiii) पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन से संबंधित निर्देशिकाएं, संहिताएं या पथप्रदर्शिकाएं तैयार करना :
- (xiv) ऐसे अन्य विषय जो केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबंधों का प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक या समीचीन समझे ।
- (3) यदि केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझती है तो वह, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार की ऐसी शक्तियों और कृत्यों के (जिनके अंतर्गत धारा 5 के अधीन निदेश देने की शक्ति है) प्रयोग और निर्वहन के प्रयोजनों के लिए और उपधारा (2) में निर्दिष्ट ऐसे विषयों की बाबत उपाय करने के लिए जो आदेश में उल्लिखित किए जाएं, प्राधिकरण या प्राधिकरणों का ऐसे नाम या नामों से गठन कर सकेगी जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं और केन्द्रीय सरकार के अधीक्षण और नियंत्रण तथा ऐसे आदेश के उपबंधों के अधीन रहते हुए, ऐसा प्राधिकरण या ऐसे प्राधिकरण ऐसी शक्तियों का प्रयोग या ऐसे कृत्यों का निर्वहन कर सकेंगे या ऐसे आदेश में इस प्रकार उल्लिखित उपाय ऐसे कर सकेंगे मानों ऐसा प्राधिकरण या ऐसे प्राधिकरण उन शक्तियों का प्रयोग या उन कृत्यों का निर्वहन करने या ऐसे उपाय करने के लिए इस अधिनियम द्वारा सशक्त किए गए हों।

- 4. अधिकारियों की नियुक्ति तथा उनकी शक्तियां और कृत्य (1) धारा 3 की उपधारा (3) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, ऐसे पदाभिधानों सहित ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति कर सकेगी और उन्हें इस अधिनियम के अधीन ऐसी शक्तियां और कृत्य सौंप सकेगी जो वह ठीक समझे ।
- (2) उपधारा (1) के अधीन नियुक्त अधिकारी केन्द्रीय सरकार के या यदि उस सरकार द्वारा इस प्रकार निदेश दिया जाए तो, धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन गठित प्राधिकरण या प्राधिकरणों, यदि कोई हों, के अथवा किसी अन्य प्राधिकरण या अधिकारी के भी साधारण नियंत्रण और निदेशन के अधीन होंगे।
- 5. निदेश देने की शक्ति केन्द्रीय सरकार, किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के अधीन अपनी शक्तियों के प्रयोग और अपने कृत्यों के निर्वहन में किसी व्यक्ति, अधिकारी या प्राधिकरण को निदेश दे सकेगी और ऐसा व्यक्ति, अधिकारी या प्राधिकरण ऐसे निदेशों का अनुपालन करने के लिए आबद्ध होगा।

स्पष्टीकरण – शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि इस धारा के अधीन निदेश देने की शक्ति के अंतर्गत, –

- (क) किसी उद्योग, संक्रिया या प्रक्रिया को बन्द करने, उसका प्रतिषेध या विनियमन करने का निदेश देने की शक्ति है ; या
- (ख) विद्युत या जल या किसी अन्य सेवा के प्रदाय को रोकने या विनियमन करने का निदेश देने की शक्ति है ।
- ¹[**5क. राष्ट्रीय हरित अधिकरण को अपील** कोई व्यक्ति जो, राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के प्रारंभ होने पर या उसके पश्चात् धारा 5 के अधीन जारी किन्हीं निदेशों से व्यथित है, वह राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 की धारा 3 के अधीन स्थापित राष्ट्रीय हरित अधिकरण को, उस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, अपील फाइल कर सकेगा]
- 6. पर्यावरण प्रदूषण का विनियमन करने के लिए नियम (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में

_

^{1 2010} के अधिनियम सं. 19 की धारा 36/अनु. द्वारा अंत:स्थापित ।

अधिसूचना द्वारा, धारा 3 में निर्दिष्ट सभी या किन्हीं विषयों की बाबत नियम बना सकेगी ।

- (2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :
 - (क) विभिन्न क्षेत्रों और प्रयोजनों के लिए वायु, जल या मृदा की क्वालिटी के मानक :
 - (ख) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए विभिन्न पर्यावरण प्रदूषकों की (जिनके अंतर्गत शोर है) सांद्रता की अधिकतम अनुज्ञेय सीमा ;
 - (ग) परिसंकटमय पदार्थों के हथालने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय :
 - (घ) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में परिसंकटमय पदार्थों के हथालने पर प्रतिषेध और निर्बन्धन :
 - (ङ) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रक्रिया और संक्रियाएं चलाने वाले उद्योगों के अवस्थान पर प्रतिषेध और निर्बन्धन :
 - (च) ऐसी दुर्घटनाओं के निवारण के लिए जिससे पर्यावरण प्रदूषण हो सकता है और ऐसी दुर्घटनाओं के लिए उपचार उपायों का उपबंध करने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय ।

अध्याय 3

पर्यावरण प्रदूषण का निवारण, नियंत्रण और उपशमन

- 7. उद्योग चलाने, संक्रिया, आदि करने वाले व्यक्तियों द्वारा मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों का उत्सर्जन या निस्सारण न होने देना कोई ऐसा व्यक्ति जो कोई उद्योग चलाता है या कोई संक्रिया या प्रक्रिया करता है, ऐसे मानकों से अधिक जो विहित किए जाएं किसी पर्यावरण प्रदूषक का निस्सारण या उत्सर्जन नहीं करेगा अथवा निस्सारण या उत्सर्जन करने की अनुज्ञा नहीं देगा ।
- 8. परिसंकटमय पदार्थों को हथालने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रक्रिया संबंधी रक्षोपायों का पालन किया जाना कोई व्यक्ति किसी परिसंकटमय पदार्थ को ऐसी प्रक्रिया के अनुसार और ऐसे रक्षोपायों का अनुपालन करने

के पश्चात् हो, जो विहित किए जाएं, हथालेगा या हथालने देगा, अन्यथा नहीं ।

- 9. कुछ मामलों में प्राधिकरणों और अभिकरणों को जानकारी का विया जाना (1) जहां किसी दुर्घटना या अन्य अप्रत्याशित कार्य या घटना के कारण किसी पर्यावरण प्रदूषक का निस्सारण विहित मानकों से अधिक होता है या होने की आशंका है वहां ऐसे निस्सारण के लिए उत्तरदायी व्यक्ति और उस स्थान का, जहां ऐसा निस्सारण होता है या होने की आशंका है, भारसाधक व्यक्ति, ऐसे निस्सारण के परिणामस्वरूप हुए पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करने या उसे कम करने के लिए आबद्ध होगा, और ऐसे प्राधिकरणों को या अभिकरणों को जो विहित किए जाएं,
 - (क) ऐसी घटना के तथ्य की या ऐसी घटना होने की आशंका की जानकारी तुरन्त देगा ; और
 - (ख) यदि अपेक्षा की जाए तो, सभी सहायता देने के लिए आबद्ध होगा ।
- (2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रकार की किसी घटना के तथ्य की या उसकी आशंका के संबंध में सूचना की प्राप्ति पर चाहे ऐसी सूचना उस उपधारा के अधीन जानकारी द्वारा मिले या अन्यथा, उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्राधिकरण या अभिकरण, यावत्साध्य शीघ्र, ऐसे उपचारी उपाय कराएंगे जो पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करने या उसे कम करने के लिए आवश्यक हैं।
- (3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट उपचारी उपाय करने के संबंध में किसी प्राधिकरण या अभिकरण द्वारा उपगत व्यय, यदि कोई हों, उस तारीख से जब व्ययों के लिए मांग की जाती है उस तारीख तक के लिए जब उनका संदाय कर दिया जाता है ब्याज सिहत (ऐसी उचित दर पर जो सरकार आदेश द्वारा, नियत करें) ऐसे प्राधिकरण या अभिकरण द्वारा संबंधित व्यक्ति से भू-राजस्व की बकाया या लोक मांग के रूप में वसूल किए जा सकेंगे।
- 10. प्रवेश और निरीक्षण की शक्तियां (1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त किसी व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि वह सभी युक्तियुक्त समयों पर ऐसी सहायता के साथ जो वह आवश्यक समझे किसी स्थान में निम्नलिखित प्रयोजन के लिए प्रवेश करे, अर्थात : –

- (क) उसे सौंपे गए केन्द्रीय सरकार के कृत्यों में से किसी का पालन करना ;
- (ख) यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या ऐसे किन्हीं कृत्यों का पालन किया जाना है और यदि हां तो किस रीति से किया जाना है या क्या इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के किन्हीं उपबंधों का या इस अधिनियम के अधीन तामील की गई सूचना, निकाले गए आदेश, दिए गए निर्देश या अनुदत्त प्राधिकार का पालन किया जा रहा है या किया गया है;
- (ग) किसी उपस्कर, औद्योगिक संयंत्र, अभिलेख, रिजस्टर, दस्तावेज या किसी अन्य सारवान् पदार्थ की जांच या परीक्षा करने के प्रयोजन के लिए अथवा किसी ऐसे भवन की तलाशी लेने के लिए, जिसके संबंध में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसके भीतर इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है या किया जाने वाला है और ऐसे किसी उपस्कर, औद्योगिक संयंत्र, अभिलेख, रिजस्टर, दस्तावेज या अन्य सारवान् पदार्थ का उस दशा में अभिग्रहण करने के लिए, जब उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उससे इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध के लिए किए जाने का साक्ष्य दिया जा सकेगा अथवा ऐसा अभिग्रहण पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करने या उसे कम करने के लिए आवश्यक है।
- (2) प्रत्येक व्यक्ति जो कोई उद्योग चलाता है, कोई संक्रिया या प्रक्रिया करता है, या कोई परिसंकटमय पदार्थ हथालता है, ऐसे व्यक्ति को सभी सहायता देने के लिए आबद्ध होगा, जिसे उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार ने उस उपधारा के अधीन कृत्यों को करने के लिए सशक्त किया है और यदि वह किसी युक्तियुक्त कारण या प्रतिहेतु के बिना ऐसा करने में असफल रहेगा तो वह इस अधिनियम के अधीन अपराध का दोषी होगा।
- (3) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा सशक्त किसी व्यक्ति को, उसके कृत्यों के निर्वहन में जानबूझकर विलम्ब करेगा या बाधा पहुंचाएगा तो वह इस अधिनियम के अधीन अपराध का दोषी होगा ।

- (4) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबन्ध या जम्मू-कश्मीर राज्य या किसी ऐसे क्षेत्र में जिसमें वह संहिता प्रवृत्त नहीं है, उस राज्य या क्षेत्र में प्रवृत्त किसी तत्स्थानी विधि के उपबन्ध, जहां तक हो सके, इस धारा के अधीन किसी तलाशी या अभिग्रहण को वैसे ही लागू होंगे जैसे वे, यथास्थिति, उक्त संहिता की धारा 94 के अधीन या उक्त विधि के तत्स्थानी उपबन्ध के अधीन जारी किए गए वारण्ट के प्राधिकार के अधीन की गई किसी तलाशी या अभिग्रहण को लागू होते हैं।
- 11. नमूने लेने की शक्ति और उसके संबंध में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया (1) केन्द्रीय सरकार या उसके द्वारा इस निमित्त सशक्त किसी अधिकारी को विश्लेषण के प्रयोजन के लिए किसी कारखाने, परिसर या अन्य स्थान से वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थ के नमूने ऐसी रीति से लेने की शक्ति होगी, जो विहित की जाए।
- (2) उपधारा (1) के अधीन लिए गए किसी नमूने के किसी विश्लेषण का परिणाम किसी विधिक कार्यवाही में साक्ष्य में तब तक ग्राह्य नहीं होगा जब तक उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया जाता है।
- (3) उपधारा (4) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) के अधीन नमूना लेने वाला व्यक्ति
 - (क) इस प्रकार विश्लेषण कराने के अपने आशय की सूचना की ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए, अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या उस स्थान के भारसाधक व्यक्ति पर तुरन्त तामील करेगा;
 - (ख) अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या व्यक्ति की उपस्थिति में विश्लेषण के लिए नमूना लेगा ;
 - (ग) नमूने को आधान या आधानों में रखवाएगा जिसे चिन्हित और सील बन्द किया जाएगा और उस पर नमूना लेने वाला व्यक्ति और अधिष्ठाता या उसका अभिकर्ता या व्यक्ति दोनों हस्ताक्षर करेंगे;
 - (घ) आधान या आधानों को धारा 12 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित या मान्यताप्राप्त प्रयोगशाला को अविलम्ब भेजेगा ।
 - (4) जब उपधारा (1) के अधीन विश्लेषण के लिए कोई नमूना लिया

जाता है और नमूना लेने वाला व्यक्ति अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या व्यक्ति पर उपधारा (3) के खंड (क) के अधीन सूचना की तामील करता है तब –

- (क) ऐसे मामले में जहां अधिष्ठाता उसका अभिकर्ता या व्यक्ति जानबूझकर अनुपस्थित रहता है वहां नमूना लेने वाला व्यक्ति विश्लेषण के लिए नमूना आधान या आधानों में रखवाने के लिए लेगा, जिसे चिन्हित और सील बन्द किया जाएगा और नमूना लेने वाला व्यक्ति भी उस पर हस्ताक्षर करेगा; और
- (ख) ऐसे मामले में जहां नमूना लिए जाने के समय अधिष्ठाता या उसका अभिकर्ता या व्यक्ति उपस्थित रहता है, किन्तु उपधारा (3) के खंड (ग) के अधीन अपेक्षित रूप में नमूने के चिन्हित और सील बन्द आधान या आधानों पर हस्ताक्षर करने से इनकार करता है वहां चिन्हित और सील बन्द आधान या आधानों पर नमूना लेने वाला व्यक्ति हस्ताक्षर करेगा,

और नमूना लेने वाला व्यक्ति आधान और आधानों को धारा 12 के अधीन स्थापित या मान्यताप्राप्त प्रयोगशाला को विश्लेषण के लिए अविलम्ब भेजेगा और ऐसा व्यक्ति धारा 13 के अधीन नियुक्त या मान्यताप्राप्त सरकारी विश्लेषक को अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या व्यक्ति के, यथास्थिति, जानबूझकर अनुपस्थित रहने अथवा आधान या आधानों पर हस्ताक्षर करने से उसके इनकार करने के बारे में लिखित जानकारी देगा।

- **12. पर्यावरण प्रयोगशालाएं** (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, –
 - (क) एक या अधिक पर्यावरण प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगी ;
 - (ख) इस अधिनियम के अधीन किसी पर्यावरण प्रयोगशाला को सौंपे गए कृत्य करने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाओं या संस्थाओं को पर्यावरण प्रयोगशालाओं के रूप में मान्यता दे सकेगी।
- (2) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निम्नलिखित को विनिर्दिष्ट करने के लिए नियम बना सकेगी, अर्थात् :
 - (क) पर्यावरण प्रयोगशाला के कृत्य ;
 - (ख) विश्लेषण या परीक्षण के लिए वायु, जल, मृदा या अन्य

पदार्थ के नमूने उक्त प्रयोगशाला को भेजने के लिए प्रक्रिया, उस पर प्रयोगशाला की रिपोर्ट का प्ररूप और ऐसी रिपोर्ट के लिए संदेय फीस ;

- (ग) ऐसे अन्य विषय जो उस प्रयोगशाला को अपने कृत्य करने के लिए समर्थ बनाने के लिए आवश्यक या समीचीन हैं।
- 13. सरकारी विश्लेषक केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे व्यक्तियों को, जिन्हें वह ठीक समझे और जिनके पास विहित अर्हताएं हैं, धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित या मान्यताप्राप्त किसी पर्यावरण प्रयोगशाला को विश्लेषण के लिए भेजे गए वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थ के नमूनों के विश्लेषण के प्रयोजन के लिए सरकारी विश्लेषक नियुक्त कर सकेगी या मान्यता दे सकेगी।
- 14. सरकारी विश्लेषकों की रिपोर्ट किसी ऐसी दस्तावेज का, जिसका किसी सरकारी विश्लेषक द्वारा हस्ताक्षरित रिपोर्ट होना तात्पर्यित हैं, इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में उसमें कथित तथ्यों के साक्ष्य के रूप में उपयोग किया जा सकेगा।
- 15. अधिनियमों तथा नियमों, आदेशों और निदेशों के उपबंधों के उल्लंघन के लिए शास्ति (1) जो कोई इस अधिनियमों के उपबन्धों या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों या दिए गए निदेशों में से किसी का पालन करने में असफल रहेगा या उल्लंघन करेगा वह ऐसी प्रत्येक असफलता या उल्लंघन के संबंध में कारावास से, जिसकी अविध पांच वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, और यदि ऐसी असफलता या उल्लंघन चालू रहता है तो अतिरिक्त जुर्माने से, जो ऐसी प्रथम असफलता या उल्लंघन के लिए दोषसिद्धि के पश्चात् ऐसे प्रत्येक दिन के लिए जिसके दौरान असफलता या उल्लंघन चालू रहता है, पांच हजार रुपए तक का हो सकेगा. दण्डनीय होगा ।
- (2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट असफलता या उल्लंघन दोषसिद्धि की तारीख के पश्चात् एक वर्ष की अविध से आगे भी चालू रहता है तो अपराधी, कारावास से, जिसकी अविध सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डनीय होगा ।
 - 16. कंपनियों द्वारा अपराध (1) जहां इस अधिनियम के अधीन

कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है वहां प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का सीधे भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे:

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को इस अधिनियम के अधीन उपबंधित किसी दण्ड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा।

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, -

- (क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम है : तथा
- (ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है।
- 17. सरकारी विभागों द्वारा अपराध (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया गया है वहां विभागाध्यक्ष उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा:

परन्तु इस धारा की कोई बात किसी विभागाध्यक्ष को दण्ड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी। (2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी विभागाध्यक्ष द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध विभागाध्यक्ष से भिन्न किसी अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तदनुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

अध्याय ४ **प्रकीर्ण**

- 18. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों या दिए गए निदेशों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही सरकार या सरकार के किसी अधिकारी या अन्य कर्मचारी अथवा इस अधिनियम के अधीन गठित किसी प्राधिकरण या ऐसे प्राधिकरण के किसी सदस्य, अधिकारी या अन्य कर्मचारी के विरुद्ध नहीं होगी।
- 19. अपराधों का संज्ञान कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित द्वारा किए गए परिवाद पर ही करेगा अन्यथा नहीं, अर्थात :
 - (क) केन्द्रीय सरकार या उस सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई प्राधिकरण या अधिकारी ; या
 - (ख) कोई ऐसा व्यक्ति जिसने अभिकथित अपराध की और परिवाद करने के अपने आशय की, विहित रीति से, कम से कम साठ दिन की सूचना केन्द्रीय सरकार या पूर्वोक्त रूप में प्राधिकृत प्राधिकरण या अधिकारी को दे दी है।
- 20. जानकारी, रिपोर्टें या विवरणियां केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के संबंध में समय-समय पर किसी व्यक्ति, अधिकारी, राज्य सरकार या अन्य प्राधिकरण से अपने को या किसी विहित प्राधिकरण या अधिकारी से रिपोर्टें, विवरणियां, आंकड़े, लेखे और अन्य जानकारी देने की अपेक्षा कर सकेगी और ऐसा व्यक्ति, अधिकारी, राज्य सरकार या अन्य प्राधिकरण ऐसा करने के लिए आबद्ध होगा।

- 21. धारा 3 के अधीन गठित प्राधिकरण के सदस्यों, अधिकारियों और कर्मचारियों का लोक सेवक होना धारा 3 के अधीन गठित प्राधिकरण के, यदि कोई हो ; सभी सदस्य और ऐसे प्राधिकरण के सभी अधिकारी और अन्य कर्मचारी जब वे इस अधिनियम के किसी उपबन्ध या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या निकाले गए किसी आदेश या दिए गए निदेश के अनुसरण में कार्य कर रहे हों या जब उसका ऐसा कार्य करना तात्पर्यित हो, भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझे जाएंगे।
- 22. अधिकारिता का वर्जन किसी सिविल न्यायालय को केन्द्रीय सरकार या किसी अन्य प्राधिकरण या अधिकारी द्वारा इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में या इसके अधीन कृत्यों के संबंध में की गई किसी बात, कार्रवाई या निकाले गए आदेश या दिए गए निदेश के संबंध में कोई वाद या कार्यवाही ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी।
- 23. प्रत्यायोजन करने की शक्ति धारा 3 की उपधारा (3) के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसी शर्तों और निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए ; जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं, इस अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियों और कृत्यों को [उस शक्ति को छोड़कर जो धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन किसी प्राधिकरण का गठन करने और धारा 25 के अधीन नियम बनाने के लिए हैं], जो वह आवश्यक या समीचीन समझे, किसी अधिकारी, राज्य सरकार या प्राधिकरण को प्रत्यायोजित कर सकेगी।
- 24. अन्य विधियों का प्रभाव (1) उपधारा (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों के उपबन्ध, इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।
- (2) जहां किसी कार्य या लोप से कोई ऐसा अपराध गठित होता है जो इस अधिनियम के अधीन और किसी अन्य अधिनियम के अधीन भी दण्डनीय है वहां ऐसे अपराध का दोषी पाया गया अपराधी अन्य अधिनियम के अधीन, न कि इस अधिनियम के अधीन, दण्डित किए जाने का भागी होगा।
 - 25. नियम बनाने की शक्ति (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम

के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

- (2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबन्ध किया जा सकेगा, अर्थात् : –
 - (क) वे मानक जिनसे अधिक पर्यावरण प्रदूषकों का धारा 7 के अधीन निस्सारण या उत्सर्जन नहीं किया जाएगा ;
 - (ख) वह प्रक्रिया जिसके अनुसार और वे रक्षोपाय जिनके अनुपालन में परिसंकटमय पदार्थों को धारा 8 के अधीन हथाला जाएगा या हथलवाया जाएगा ;
 - (ग) वे प्राधिकरण या अभिकरण जिनको विहित मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों के निस्सारण होने की या उसके होने की आशंका के तथ्य की सूचना दी जाएगी और जिनको धारा 9 की उपधारा (1) के अधीन सभी सहायता दिया जाना आबद्धकर होगा।
 - (घ) वह रीति जिससे विश्लेषण के प्रयोजनों के लिए वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थों के नमूने धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन लिए जाएंगे ;
 - (ङ) वह प्ररूप जिसमें किसी नमूने का विश्लेषण कराने के आशय की सूचना धारा 11 की उपधारा (3) के खण्ड (क) के अधीन दी जाएगी;
 - (च) पर्यावरण प्रयोगशालाओं के कृत्य ; विश्लेषण या परीक्षण के लिए वायु, जल, मृदा और अन्य पदार्थों के नमूने ऐसी प्रयोगशालाओं को भेजने के लिए प्रक्रिया ; प्रयोगशाला रिपोर्ट का प्ररूप ; ऐसी रिपोर्ट के लिए संदेय फीस और धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन अपने कृत्य करने के लिए प्रयोगशालाओं को समर्थ बनाने के लिए अन्य विषय ;
 - (छ) धारा 13 के अधीन वायु, जल, मृदा या, अन्य पदार्थों के नमूनों के विश्लेषण के प्रयोजन के लिए नियुक्त या मान्यताप्राप्त सरकारी विश्लेषक की अर्हताएं ;

- (ज) वह रीति जिससे अपराध की और केन्द्रीय सरकार को परिवाद करने के आशय की सूचना धारा 19 के खण्ड (ख) के अधीन दी जाएगी :
- (झ) वह प्राधिकरण या अधिकारी जिसको रिपोर्टें, विवरणियां, आंकड़े, लेखे और अन्य जानकारी धारा 20 के अधीन दी जाएगी ;
- (ञ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना अपेक्षित है या किया जाए ।
- 26. इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकृल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।